दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2498 तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष 27 अंक नं० 13

जगत में फिर्यो है

(कवित्त)

(रचयिता – भैया भगवतीदास)

जैसें कोउ श्वान पर्यो काँच के महल बीच,
ठौर ठौर श्वान देख भूंस भूंस मर्यो है।
वानर ज्यों मूठी बाँध पर्यो है पराये वश,
कुएँ में निहारि सिंह आप कूद पर्यो है।
फटिक की शिला में विलोक गज जाय अर्यो,
नलिनी के सुबटाको कौनेधों पकर्यो है।
तैसें ही अनादिकौ अज्ञानभाव मान हंस,
अपनो स्वभाव भूलि जगत मे फिर्यो है॥

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

मई : 1972] वार्षिक मूल्य 3) रुपये (324 A) एक अंक 25 पैसा [प्र. वैशाख : 2498

शतं जीव शरदः

परम पूज्य श्री कानजीस्वामी

(जिनकी 84वीं जयन्ती वैशाख शुक्ला दोज, तारीख 14-5-72 को
फतेपुर (गुजरात) में अति उल्लासपूर्वक मनाई गई।]

पूज्य स्वामीजी का मंगल-विहार गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश में हो रहा है। पूज्य स्वामीजी तारीख 16-5 तक फतेपुर में विराजमान थे। जहाँ जैन शिक्षण शिविर तथा श्री जिनेन्द पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का भव्य आयोजन बड़ी सफलता से सानंद संपन्न हुआ। पूज्य स्वामीजी तारीख 17-5 के प्रातः फतेपुर से विहार करेंगे। अगला कार्यक्रम इसी अंक में अन्यत्र दिया गया है।

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

मई : 1972 ☆ प्र. वैशाख : वीर नि० सं० 2498, वर्ष 27 वाँ ☆ अंक : 13

आत्मा की अमर्यादित शक्ति

अहो, आत्मा की चैतन्य-शक्ति का विकास ऐसा अचिंत्य है कि जिसे किसी काल या क्षेत्र की मर्यादा नहीं है; जो विकास हुआ, उसमें किंचित् भी संकोच नहीं है, वह कभी मुरझाता नहीं है। अनंत काल और अनंत क्षेत्र को एकसाथ जान ले, ऐसी शक्तिवाला चैतन्य का विकास है। ऐसी अपनी अमर्यादित शक्ति का जिसको विश्वास आया, वह अल्प विकास में या राग में क्यों रुकेगा? राग से पार होकर अंतर के पूर्ण स्वभाव के सन्मुख हो, तब ऐसी निजशक्ति की प्रतीति होती है; और प्रतीति होते ही आत्मा की शक्ति का विकास होता है। सभी आत्मगुणों में ऐसा परिपूर्ण विकसित होने का स्वभाव है।

अनंत शक्तिसंपन्न आत्मवस्तु, वह अखंडरूप से जहाँ श्रद्धा में आयी, वहाँ उसके सर्वगुणों में निर्मल परिणमन प्रारंभ हुआ; अनंत गुणों की शुद्धि के अंश का वेदन हुआ—उसे सम्यक्त्व कहते हैं।

पाँच रत्नों द्वारा आत्मा के परमस्वभाव की भावना

[श्री नियमसार : परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार, गाथा 77 से 81]

परमार्थ प्रतिक्रमण के इन पाँच रत्नों द्वारा समस्त परभावों से रहित ऐसे आत्मा के परम-स्वभाव की भावना भाते हैं। परभाव का जिसमें अभाव है, ऐसे सहज चैतन्यविलासस्वरूप आत्मा को जानकर उसकी भावना में एकाग्र होने से समस्त परभावों का प्रतिक्रमण हो जाता है; ऐसे आत्मा की भावना बिना परभावों का सच्चा प्रतिक्रमण नहीं होता; इसलिये प्रारम्भ में ही आत्मा के परमस्वभाव में सर्व परभावों के कर्तृत्व का अभाव बतलाते हैं। मैं सहज चैतन्यविलासरूप हूँ, नारकादि विभावपर्यायें मुझमें नहीं हैं, उनका मैं कर्ता नहीं हूँ।

नारकादि पर्यायें, मार्गणास्थान, गुणस्थान, जीवस्थानरूप अशुद्ध दशाएँ, बाल-वृद्ध-युवावस्थाएँ, राग-द्वेष-मोह या क्रोध-मान-माया-लोभ, इन समस्त परभावों का कर्तृत्व मेरे परमस्वभाव में नहीं है। अहा, एक ओर अकेला परमस्वभाव, तथा दूसरी ओर समस्त परभाव; जहाँ सहज परमस्वभावोन्मुख होकर उसकी भावना की, वहाँ समस्त परभावों का उसमें अभाव है।—ऐसा सहज चैतन्यतत्त्व मैं हूँ;—इसप्रकार धर्मी जीव अपने शुद्धतत्त्व की भावना करता है। ऐसी भावना वह मोक्ष का कारण है।

अंतर्मुख होकर जो परम स्वभाव में आया, वह परभावों से विमुख हुआ, उसे शुद्धात्मा कहा जाता है और उसी ने परमार्थ प्रतिक्रमण किया है। जो 'मैं' नहीं हूँ, उसका कर्तृत्व मुझे कैसे होगा? मैं तो सहज चैतन्य परमभाव हूँ, चैतन्य के परमभाव की अनुभूति में कोई परभाव है ही नहीं, इसलिये मुझे उन किन्हीं भावों का कर्तृत्व नहीं है, उनका करानेवाला या अनुमोदन करनेवाला मैं नहीं हूँ—ऐसा अनुभव करनेवाले धर्मी को सच्चा प्रतिक्रमण है। परभावों में स्थित रहकर उनका प्रतिक्रमण कैसे होगा? जो स्वभाव में आया, वह परभावों से विमुख हुआ। धर्मी नरकगति में हो, तथापि अपने आत्मा को नारकादि गतिरहित शुद्धस्वरूप से स्वीकार करता है; उसकी श्रद्धा में ऐसा नहीं है कि मैं नारकी हूँ; वह तो अपने को सहज

चैतन्यस्वरूप ही स्वीकार करता है और उस चैतन्यभाव में नारकादि भाव का अभाव है। धर्मी का शुद्ध चैतन्यभाव नरकादि चार गतियों का बंध भी नहीं करता और उन्हें भोगता भी नहीं है। चार गतियों के कारणरूप शुभाशुभभाव ही चेतना में कहाँ है ? सम्यग्दृष्टि को अभेद आत्मा की जो अनुभूति है, उसमें चार गतियाँ या उनके कारणरूप भाव तो नहीं हैं, तथा ज्ञानमार्गणा के भेद आदि भेद भी उसमें नहीं हैं उस अनुभूति में तो एक सहज चैतन्यविलासरूप आत्मा ही प्रकाशमान है। धर्मी को भेद के विकल्पों का ग्रहण नहीं है, उसने तो अपने शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप में ही चित्त को एकाग्र किया है; अपने शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय के अतिरिक्त समस्त परभावों का परिग्रह उसके नहीं है। इसप्रकार निजभावों से भिन्न सकल अन्य भावों को छोड़कर वह अल्पकाल में मुक्ति प्राप्त करता है।

धर्मी का ध्येय कैसा आत्मा है, उसका यह वर्णन है। ऐसे आत्मा को जानकर उसके अनुभव में चित्त को लगाया, वहाँ सर्व परभावों से प्रतिक्रमण हो गया। ऐसे आत्मा के ग्रहण बिना परभावों का त्याग नहीं होता। इन्द्रियाँ मुझमें हैं ही नहीं, वहाँ इन्द्रियों का आलम्बन कैसा ? इन्द्रियातीत ज्ञान द्वारा जो जानने में आये, वह मैं हूँ। ऐसे आत्मा में उपयोग लगाने से ज्ञान में भेद-विकल्प नहीं रहते, अभेद अनुभूति जमती है। ऐसी अनुभूति जमी, वहाँ अतीन्द्रिय आनंद का वेदन है। आत्मा स्वयं अपने में जम गया... लीन हो गया, वहाँ कोई परभाव उसमें नहीं रहे। ऐसी परिणतिरूप आत्मा परिणमित हो, उसे परमार्थ प्रतिक्रमण कहा जाता है।

परिणति अपने अकषायस्वभाव में अभेद होकर परिणमित हुई, वहाँ उसमें कषाय कैसा ? और दुःख कैसा ? उसमें जनम-मरण कैसे ? और शरीर कैसा ? द्रव्य में कषाय नहीं है—ऐसा स्वीकार करनेवाली दृष्टि में भी कषाय नहीं है; इसलिये द्रव्य और पर्याय दोनों शुद्ध हैं।—ऐसे स्वतत्त्व का धर्मी अनुभव करता है; फिर पर्याय में कुछ रागादिभाव रहें, उन्हें वास्तव में परज्ञेयरूप जानता है। अहा, ऐसा मेरा भगवान आत्मा! वह अब मेरे अनुभव में आया; अब कोई परभाव मुझे अपनेस्वरूप भासित नहीं होते। मैं तो एक परमस्वभावी हूँ, भेद का विषय मैं नहीं हूँ; द्रव्य-गुण-पर्याय के भी भेद रहित एक अभेद परमभावरूप से अनुभव में आया, वह मैं हूँ; सम्यग्दर्शन हुआ, उसमें ऐसा आत्मा साक्षात् हुआ है, स्पष्ट निःशंक अनुभव में आया है।

भाई, संत जो स्वरूप बतलाते हैं, वह तू है। तेरा स्वरूप स्वयं ऐसा महान है—वही संत

कहते हैं। ऐसा स्वरूप समझकर अनुभव में लेना ही मोक्ष का सरल मार्ग है, दूसरा तो कोई मार्ग ही नहीं है। आत्मा के अनुभव की यह कला ही धर्म की अपूर्व विद्या है।

चैतन्यस्वरूप ऐसा जो मैं-परमभाव, उसमें गुणस्थान के भेद नहीं हैं; भेद के विकल्पों का मैं कर्ता नहीं हूँ, उसका मुझे अनुमोदन नहीं है, उसका मैं कारण नहीं हूँ। मेरा कर्तापना, कारणपना या अनुमोदनपना अपनी सहज चैतन्य अनुभूति में ही समाया है; उससे बाहर किन्हीं भंग-भेदों में मैं नहीं हूँ।—ऐसा धर्मी अनुभव करता है। भेद-विकल्प, वह मैं हूँ ही नहीं, तो फिर जो मैं नहीं हूँ, उसका कर्ता मैं क्यों होऊँ?

सहज ज्ञान-दर्शन-आनंदस्वरूप मैं हूँ;—ऐसा मैं भाता हूँ अर्थात् ऐसे स्वरूप ही आत्मा को अनुभवता हूँ। मेरे सहज चैतन्य-विलास में कोई पुण्य-पाप नहीं हैं, इसलिये उनके फलरूप चार गतियाँ मुझे नहीं हैं, उनका कर्ता मैं नहीं हूँ।

एक ओर परम ज्ञानतत्त्व, दूसरी ओर रागादि समस्त परभाव। परम ज्ञानतत्त्व से सर्व परभाव बाह्य हैं। जो अंतर्मुख होकर ज्ञानतत्त्व का अनुभव करता है, उसकी अनुभूति में गुणस्थान-मार्गणास्थान संबंधी किन्हीं परभावों का अस्तित्व ही नहीं है। इसलिये उनका कर्तापना नहीं है। धर्मी की स्वसत्ता तो आनंदमय चैतन्यविलास से परिपूर्ण है। ऐसी चैतन्यसत्ता में जड़ शरीर कैसा और राग कैसा?—तो फिर उस जड़ शरीर से और राग से जीव को धर्म हो—यह बात भी कैसी? अहा, मेरा तत्त्व सर्व भेद-भंगरूप व्यवहार के विकल्पों से निरपेक्ष है; परभावों से पृथक् मेरा सहज तत्त्व है, उसी को मैं भाता हूँ। देखो, भेदज्ञान द्वारा ऐसे तत्त्व की भावना से वीतरागता होती है और चारित्र प्रगट होता है—ऐसा इन पाँच गाथाओं के बाद तुरंत (82वीं गाथा में) कहेंगे।

भेदज्ञान द्वारा राग और देहादि से भिन्न चैतन्यतत्त्व को जो भाये, उसी को उसका कर्तृत्व छूटकर मध्यस्थतारूप वीतरागता होती है, और उसी को चारित्रदशा प्रगट होती है। परंतु शरीर की क्रिया का या राग के एक विकल्प का भी कर्तृत्व (उसकी रुचि) जिसे हो, उसे उसमें मध्यस्थता नहीं होती, और मध्यस्थता के बिना वीतरागता नहीं होती; वीतरागता के बिना चारित्रदशा नहीं होती। इसप्रकार भेदज्ञान के बिना अर्थात् शुद्धात्मा की भावना के बिना कभी चारित्र नहीं होता। अहो, जैनमार्ग कोई अलौकिक है... यह तो अंतर में चैतन्य का वीतरागी मार्ग है।

इसप्रकार पाँच रत्नों जैसी इन पाँच गाथाओं में कहे हुए भेदज्ञान की भावना द्वारा जिसने अपने सहज चैतन्यतत्त्व को समस्त परभावों से भिन्न किया है, भेदज्ञान द्वारा समस्त विषयों की और परभावों के ग्रहण की चिंता को छोड़ दिया है और अपने शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप को ही ग्रहण किया है, ऐसा भव्य जीव अल्पकाल में ही मुक्ति को प्राप्त करता है। भेदज्ञान की भावना का यह फल है। अध्यात्मरस की अपूर्व धारा भेदज्ञान में बहती है।

धर्मी ने भेदज्ञान द्वारा दो विषयों को भिन्न कर दिया है—एक ओर अंतर में शुद्ध अभेद स्वविषय; तथा दूसरी ओर समस्त परविषय;—ऐसे भेदज्ञान द्वारा शुद्ध स्वविषय का ग्रहण किया और समस्त परविषयों का ग्रहण छोड़ दिया।—ऐसा करे, तब मिथ्यात्व का प्रतिक्रमण करके जीव सम्यग्दृष्टि होता है। परविषय में तो शुद्धात्मा के अतिरिक्त अन्य सब कुछ आ गया। किसी भी परवस्तु को विषय बनाकर जो शुभवृत्ति उठती है, वह भी आत्मा का स्वविषय नहीं है, उसे भी परविषय जानकर धर्मी छोड़ता है, अर्थात् स्वविषय से भिन्न जानता है। जिसे भिन्न जानेगा, उसका कर्तृत्व कैसे होगा? उसकी भावना कैसे होगी? उसका ग्रहण करने की वृद्धि कैसे होगी? इसप्रकार धर्मी को समस्त परविषयों को ग्रहण करने की बुद्धि छूट गई है और शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्यायरूप एक स्ववस्तु का ही ग्रहण है, उसी में एकाग्रचित्त द्वारा वह परम आनंद का अनुभव करता है और मोक्ष को साधता है।

ऐसे आत्मा के अनुभव में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्मलपर्याय के अभेदरूप भावलिंग भी नहीं है। अनुभव में निर्मलपर्याय होती है अवश्य, परंतु 'यह द्रव्य और यह मेरी निर्मल पर्याय'—ऐसे भेद एक अभेद वस्तु में नहीं है। अभेद में भेद पैदा करने से विकल्प उठते हैं और आकुलता होती है, वहाँ अन्य बाह्यविकल्पों की तो बात ही क्या? विकल्प तो आकुलता की भट्टी है, चैतन्य की शांति उनमें नहीं है। शांतरस के पिण्डरूप मेरा चैतन्यतत्त्व, वह विकल्प की अशांति में कभी नहीं आता। सुख के समुद्र में मग्न हुआ आत्मा आकुलता का कर्ता क्यों होगा? अहा, ऐसा चैतन्यतत्त्व.... उसे लक्ष में लेने से परम आनंद होता है। इसप्रकार ऐसा तत्त्व भीतर लक्ष में तो लो। उसे लक्ष में लेने से एक क्षणमात्र में सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और महान आनंद होगा।

जिसने स्वानुभव से ऐसे निजतत्त्व को जाना, उसने सब जान लिया। और जिसने

निजत्तव को नहीं जाना, उसका सब ज्ञातृत्व निष्फल है—

जब जाना निज रूप को तब जाना सब लोक;
जाना नहि जिन रूप को तो सब जाना फोक।

भाई, परभावों से भिन्न अपने शुद्ध स्वतत्त्व को जाने बिना तू परभावों को किसप्रकार छोड़ेगा? अपनी दृष्टि में स्वतत्त्व को ग्रहण करे, तभी परविषयों के साथ की एकताबुद्धि छूटे अथात् मिथ्यात्वादि का प्रतिक्रमण हो।

अंतर्मुख अवलोकन द्वारा ही मोह-विकल्प छूटते हैं—

उपजे मोह-विकल्प से समस्त यह संसार,
अंतर्मुख अवलोकते विलय होत नहि वार॥

अंतर्दृष्टि करते ही तेरे समस्त परभाव छूट जायेंगे और अपना शुद्धस्वरूप तेरे अनुभव में आयेगा। निर्मल पर्याय हो, वह भीतर शुद्धस्वरूप के साथ अभेद होती है; स्वसन्मुखता से आत्मा निर्मलपर्याय में अभेदरूप से परिणमित होता है और रागादि परभावों से भिन्नता हो जाती है, इसी का नाम भेदज्ञान है। ऐसे भेदज्ञान की भावना द्वारा अल्पकाल में चारित्रदशा प्रगट करके जीव मुक्ति को प्राप्त करता है।

—: विराग :—

[श्री शुभचंद्राचार्य तथा भर्तृहरि का एक प्रसंग]

इस नाम के धारक अनेक हो गये। 'ज्ञानार्णव' नामक महान ज्ञान-वैराग्यदर्शक ग्रंथ के प्रणेता के बार में कथा है, जो परम वीर थे, जिनको चैतन्यस्वरूप में विश्रांति द्वारा मुनिपद सुखरूप था, कायर को मिथ्या प्रतिभासवश जैनमुनिपद कठिन दु:खदाता भासित होता है किंतु अक्षय अनंत सुखरूप मोक्ष उनका कारण मोक्षमार्ग कभी भी दु:खरूप दु:खदाता नहीं हो सकता है। वैराग्य कई प्रकार के होते हैं।

1. राग-गर्भित, 2. द्वेष-गर्भित, 3. मोह-दु:ख गर्भित और चौथा नित्य भूतार्थ ज्ञायक स्वभावाश्रित ज्ञान-गर्भित वैराग्य है, जो उसी सच्चे ज्ञान वैराग्य की उपासनामय मुनिपद जिनको हठरहित होता है। [ऐसे मुनिराज को नित्य नमस्कार हो।]

अब कथा के अंश पढ़िये :—

1. शुभचंद्र थे बड़े और भर्तृहरि छोटे भाई थे, उनके पिता महाराजा थे। पिता इसकारण चिंता में थे कि ये दोनों पुत्र परम पराक्रमशील, तेजस्वी, शूरवीर हैं और मेरी नयी रानी और उनके पुत्र जो मुझे अत्यधिक प्रिय हैं किंतु नई रानी के पुत्र इतने शूरवीर भी नहीं हैं और मेरी इच्छा नई रानी के पुत्र को राज्य देकर रानी को संतुष्ट करने की है। एकदिन प्रसंग ऐसा हुआ कि—नवयुवक राजपुत्र खेल रहे थे; मंडप में लगे बड़े लोहे के स्तम्भ को गन्ने के (सांठे के) समान मोड़ दिया। यह अतिशय शरीरबल धारी पुत्रों को देखकर राजा को भय लगा कि ये दोनों पुत्रों का अस्तित्व भविष्य में मेरी इच्छापूर्ति में बाधक है—मंत्री को आज्ञा की कि यह बड़े दो राजपुत्र हैं, उन्हें जंगल में ले जाओ, मार डालो। मंत्री ने राजा को समझाया, राजा ने जवाब दे दिया—राज्य की नीति में ऐसा होता है। मंत्री इस अनुचित बात को मन में धिक्कारते हुए बड़े दु:खी होकर राजपुत्रों को संसार की विषमता समझाते हैं कि—भैया, आप तो बड़ पुण्यवान शूरवीर हैं, किंतु धिक्कार है मोह को जो आपके पिता आपकी महानता-शूरवीरता को देखकर

स्वार्थांध हो जल रहे हैं, आपकी हत्या करने की मुझे आज्ञा दी है किंतु मेरे द्वारा ऐसा नहीं होगा, आप शीघ्र कहीं चले जायें, गुप्त भेष में ही रहना।

संसार की विषमता के उदाहरण का अनुभव करते ही दोनों भाई को वैराग्य हो गया, दोनों भाई अपनी-अपनी रुचि के अनुसार सुख की शोध में अलग-अलग निकल पड़े। जैन मुनियों में तो तदन निष्परिग्रह दशा और अंतरंग में भेदविज्ञान की प्रवीणता से प्राप्त नित्यज्ञानानंदमयी ऐसा अंतरंग में प्रगट अति सूक्ष्म चैतन्यस्वभाव के आलंबन से जितेन्द्रियता और अतीन्द्रिय आत्मिक सुख ही होता है, जिसे शास्त्रीय भाषा में शुद्धोपयोगरूप-साधकदशारूप मुनिधर्म कहते हैं। भर्तृहरि को उस आत्मिक सुख और उनके साधन की श्रद्धा भी नहीं थी, अतः देह-इन्द्रियाँ और उनके विषयों में सुख मानने के भ्रम में थे, जैन साधु-परमेष्ठीपद में तो दुःख है, ऐसे मिथ्या प्रतिभासवश, कुलिंगी जो अज्ञानी पंचाग्नितप द्वारा हिंसा में हिंसा न मानकर धर्म माननेवाले थे, उनकी संगति पाकर, उनके अनुयायी बनकर वहाँ सुख-सुविधा मानकर उनका भक्त बन गया।

शुभचंद्रजी को तो लोकोत्तर और पवित्र संयमित जीवन प्रिय था, किसी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को इष्ट-अनिष्ट मानना या किसी से भय, या आशा रखना उसे जरा भी सम्मत नहीं था, वे तो निरंतर-नित्य निरंजन ज्ञानमय निजरूप का आदर, आश्रय चिंतन सहित सोचते जा रहे थे, अपने त्रैकालिक सत्त्व को दृष्टिपथ पर रखकर संसार की विषमता, अस्थिरता जानकर प्राणी को एकत्व-विभक्त, और उत्तम मंगल शरण है, स्वयंभू अपनी आत्मा—इसप्रकार सच्चे सुख के शोधक थे, निजशक्ति के बल से उनकी इतनी तैयारी हो चुकी थी जो यथाजातरूपधर जिनमुद्राधारी निस्पृह जिन मुनि को पा लिये, एकाकी आत्मरूप में मग्नरूप में दिगम्बर जैनमुनि को देखा तो हृदय गद्‌गद् आनंदविभोर हो गया, जैसे तृषातुर को पवित्र जल की प्राप्ति, मोती बननेयोग्य सीप को स्वाति नक्षत्त में जलवर्षा मिले, उसीप्रकार शुभचंद्र ने वासना-विजयी, तत्त्वज्ञान और विवेकमूर्ति जैन साधु को निर्जंतु स्थान पर ध्यानमुद्रा में स्थित देखा—जिनमुनि का नाम था वंदनीय श्रुतसागर।

शुभचंद्र की आध्यात्मिकता को एक मौका दिया। उन्होंने एक विवेकी बुद्धिमान की तरह उनके योग्य बनकर गुरु-उपासना द्वारा आत्मार्थी बनकर निज आत्महित का भरपूर लाभ उठाया।

शुभचंद्रजी ने श्रीगुरु के समीप श्रद्धा-ज्ञान और आचरण का बल विशेष प्रगट करने के लिये प्रार्थना की; भगवान! मुझे सब विषमताओं को नष्ट करनेवाली साधुपद के योग्य निर्ग्रंथ मुनिपद की दीक्षा देने का अनुग्रह कीजिये.... फिर थोड़े ही समय में शुभचंद्र राजपुत्र न रहकर, परम शांत, वैराग्य-मंडित, निर्लिप्त, निर्ग्रंथ साधु परमेष्ठी की श्रेणी में जा बैठे—'विषयाशावशातीतो निरारंभोऽपरिग्रहः, ज्ञान ध्यान तपोरक्तः तपस्वी सः प्रशस्यते।' बस अब अखंड ज्ञानचेतना के स्वामित्व उपरांत स्वरूप में विश्रांतिरूप विशेष स्वरूपाचरण चारित्रधारा में हमारे आराध्य योगिराज शुभचंद्र (पवित्र-धवल) अखंडित प्रतापवंत ज्ञान-वैराग्यम उज्ज्वल आराधना में लवलीन रहते थे। कितनी ऋद्धि-सिद्धियाँ प्राप्त हैं, कभी उस पर उपयोग लगाया नहीं था धन्य अवतार... कहा है कि—

जिनको काल ही किंकर हो रहा!
मृगतृष्णा सम त्रैलोक, जीना धन्य उन्हीं का।
आशा-दासी पिशाची हो रही, काम क्रोध सो बंदी लोग।
जीना धन्य मुनिवर का॥
रिद्धि-सिद्धियाँ दासी हो रही, ब्रह्मानंद हृदय ने समाय।
जीवन धन्य उन्हीं का॥
मानो संत सलोने उन्हीं को, अन्य मातृ उदर-भार।
जीना धन्य उन्हीं का॥
प्रतिबन्धरहित मुनिराज है, नहिं कायर का 'यह' काम।
जीना है धन्य आपका॥

वास्तव में शुभचंद्रजी अब ऋद्धिधारक दिगम्बर मुनि मुनि थे।

भर्तृहरि-जिसको अनित्य जागीकावत् मोहगर्भित वैराग्य था। दुनिया के अरुचिकर-संघर्ष, विषयों में इष्ट-अनिष्ट प्रतिभास और विषादमय घटनाओं को सोचता-विचारता बहुत जगह घूमा; खान-पान, थकान, स्नान, आराम-विश्राम को याद करने लगे, देह के प्रति ममता विशेषरूप से जाग उठी, क्षुधा आदि के प्रश्न हल करने में चिंति हो उठा, कन्दमूल-फल जो हाथ लगे, उनका उपभोग करने लगे, अनछना पानी जो जलजंतु से परिपूर्ण होते हैं पीने लगा,

फिर भी चाह-तृष्णा ज्यों की त्यों बनी रही। सघन वन में घूमते हुये भर्तृहरि ने देखा कि चारों ओर आग जलाकर बीच में मस्तक पर बड़ी-बड़ी जटाओं को धारण करनेवाले एक तपस्वी उच्च सिंहासन पर विराजे-पंचाग्नितप तप रहे हैं, वंदन नमस्कार करके आश्रय देने की प्रार्थना की, तापसी ने राजकुमार है, ऐसा जानकर प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया - कई वर्षों के पश्चात् भर्तृहरि यंत्र-मंत्रादि वनस्पति रसायन विद्या का जानकर होकर गुरु से पृथक् हो गये और सुवर्ण बनाने की रसकुप्पी तैयार की, जनरंजन के लिये भक्त समाज जुट गये, एक दिन अपने भ्राता श्री शुभचंद्र की याद आई, शिष्यों को उनकी खोज में भेजा गया, बहुत खोज के पश्चात समाचार आया कि भैया तो नग्न दिगम्बर ही हैं। घोर दरिद्रता दिख रही है, वस्त्र का टुकड़ा भी नहीं और न भोजन के कोई साधन हैं, भक्तगण भी उनकी व्यवस्था में नहीं हैं। बड़े कष्ट में हैं, ऐसा प्रत्यक्ष देखकर आया हूँ (नोंध - देखो संयोग में निमित्त में एकत्वबुद्धिवान जीव देह और आत्मा को एक मान रहे हैं, उसे निर्ग्रंथ वीतरागता क्या है ? जरा भी पता नहीं होता। जैन मुनि अशरण अनाथ दु:खी कभी नहीं है, इच्छा ही दु:ख है, दु:ख का अभाव ही सुख है, मुनि को तो अपने अंतरंग में प्रगट अति सूक्ष्म चैतन्यस्वभाव में एकाग्रता के बल से परम अतीन्द्रिय महान सुख है, जो अंतर्दृष्टिग्राह्य है; अज्ञानी ऐसा न मानकर अपनी देहात्मबुद्धि द्वारा बाह्य वस्तु के संयोग-वियोग में इष्ट-अनिष्ट मानकर अपने को सुखी मानता है। अत: वह मिथ्या प्रतिभास ही संसार है, दु:ख है।)

जब शिष्य के द्वारा ऐसा समाचार सुना कि शुभचंद्र बहुत दु:खी दशा में है, तब उनका दु:ख मेटने के लिये अपनी आधी रस-तुम्बी भेजी और कहा कि भैया को दे आना, समझाना कि यह दुर्लभ वस्तु है, स्पर्श मात्र से तांबा सोना बन जाता है, आपकी दरिद्रता को देखकर सुखी करने के लिये आपके लघुबन्धु ने यह कठिन साध्य वस्तु आपक लिये भेजी है, उनका उपयोग करके सुख-सुविधा में रहे....। (देखो, संयोग में एकताबुद्धि-देहात्मबुद्धिवान पर से सुख-दु:ख इष्ट-अनिष्ट मानता है, मनवाना चाहता है, सबको अपनी देहाश्रित ममता की दृष्टि से देखता रहता है, वह मिथ्या प्रतिभास ही सबसे बड़ा पाप है; दु:ख है, संसार है।)

शिष्य जब शुभचंद्रजी (जो निरंतर आत्मिक सुख में तृप्त हैं, सुखी ही हैं) के पास पहुँचता है, वह रस-तुम्बी सामने रखकर सब निवेदन किया। उपेक्षाबुद्धि से देखा—जवाब दिया—कि उसे पत्थर पर पटको... शिष्य दुविधा में पड़ गया, अरे... कितनी वनस्पति-

धातुओं का कष्टसाध्य रस कैसे पटका जाये ? शुभचन्द्र ने फिर कहा, त्याग की वस्तु के प्रति इतना ममत्व क्या ! पटक दो... दु:ख के साथ आज्ञा का पालन किया, लौटकर भर्तृहरि को यह हाल सुनाया कि बड़े भाई ने ऐसा कहा, उनको आज्ञानुसार वह सिद्ध किया गया, रस पत्थर पर फेंक दिया। भर्तृहरि को जितना मोह अपने शरीर के प्रति था, उतना ही मोह सुवर्णसिद्धि रस के ऊपर था, समाचार सुनकर सन्न हो गये, हृदय में बहुत बड़ा आघातरूप वेदना का अनुभव करने लगा, रात भर चिंतित रहा, हाय मैंने गलती की, इतनी बहुमूल्य वस्तुएँ कहीं यों भेजी जाती हैं ? अब मैं जाकर भैया को समझा दूँगा, ऐसी भूल नहीं होने दूँगा, इत्यादि संकल्प-विकल्परूप आर्तध्यान करते रहे, फिर सोचता है कि हो सकता है कि मेरे शिष्य ने भैया को इस दुर्लभ रसायन रस की ठीक-ठीक महत्ता ही न बताई हो, सुबह तक अनेक चिंताओं में मशगूल रहा, बिस्तर में पड़ा रहा, सो नहीं पाया।

सुबह उठा, असंतोष मिटाने का व्यर्थ उपाय जो इच्छा की पूर्ति करने की महत्त्वाकांक्षा के लिये स्वयं अपनी आधी बीच रसकुप्पी लेकर चल पड़े भैया को देखने के लिये। संयोगी दृष्टि तो थी ही, दूर से देखा, क्या देखा चमड़े को, कि ओह... भैया का कृश शरीर है, एकाकी असहाय है, अनाथ है, तपोबल से उद्दीप्त शांत सौम्यमुद्रा से दृढ़ पद्मासन पर आसीन है, ज्ञानानंदमय तत्त्व को न पहचानकर चर्मचक्षु द्वारा पहचाना— 'कि अहो यही मेरा बड़ा भैया ही तो है।' और वह गद्‌गद् हो उठा, चरणों में गिरकर अभिवादन किया-'सप्रेम वंदना....'

सर्वज्ञ वीतराग कथित सच्चे योगिराज शुभचंद्र तो उत्तम क्षमा, संतोष, अकिंचन भावना से अलंकृत थे, सहज अपनी आत्मलक्ष्मी के अवलोकन से सदा तृप्त ही थे। कोई खड़ा है नजर उठाकर देखा तो भर्तृहरि... गेरुआ वस्त्रों, माला, जटा आदि से मंडित, मृगचर्म सहित परिग्रहधारी छोटा भैया था... धर्मवृद्धि हो !

भर्तृहरि बोला—'भेया ! जैसे ही सुना कि तुम अनाथ हो, संकट में हो, आधी तूँबी कंचनरस भेज दिया था, लेकिन व्यर्थ गया ! अब शेष आधी तूँबी भी लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।'

'हाँ ! क्या होता है इससे ?'—सोना बनाया जाता है—भैया, बड़ी बेशकीमती चीज़ है !'

'सोना!' शुभचंद्र ने पूछा और तूंबी उठाकर पत्थर पर पटक दी। भर्तृहरि सन्न!!! शुभचंद्र बोले—कहाँ हुआ सोना ?—रुँधे गले से कहा—'भैया! पत्थर नहीं, तांबा सोना बनता है। तुमने यह क्या किया... उफ!!! बारह वर्ष गुरु की सेवा करने पर इसे पा सका था-मैं। ओह यह अति दुर्लभ वस्तु न तुम्हारे काम आई, न मेरी रही।

शुभचंद्र मुस्कराये—भर्तृहरि की सरलता और भोलेपन पर! फिर बाले—'भर्तृहरि! तुम घर छोड़कर विराग के लिये, यहाँ आये थे,—धन, दौलत, मान-सन्मान और राज्यलक्ष्मी को ठुकराकर। मैं देख रहा हूँ सोने के लोभ को यहाँ आकर भी तुम नहीं छोड़ सके हो! आज भी तुममें कलंक बाकी है। इतने वर्ष बिताकर भी मिथ्या प्रतिभास—अज्ञानता वश रहे, इसे विराग नहीं, दम्भ कहते हैं भोले प्राणी! धर्म के नाम अनंत भव में कई ढोंग कर चुके... पवित्र होने का उपाय अपूर्व है... जैसे सूर्य सदा प्रकाशमय ही है, वह कभी भी अंधकार का ग्रहण या त्याग कर सकता है ? नहीं; उसीप्रकार यह आत्मा चाहे अशुद्धरूप परिणमे या शुद्धरूप किंतु परद्रव्य को किसी भी प्रकार ग्रहण-या त्याग नहीं कर सकता। हाँ, रागी जीव उनकी भूमिका के अनुसार ये करना, ये न करना, ऐसा रागभाव कर सकता है, अपने त्रैकालिक निर्मल पूर्ण विज्ञानघन स्वतत्त्व के आलंबन के बल द्वारा भेदविज्ञान की प्रवीणतारूप स्वसन्मुख ज्ञाता बन अपूर्व धैर्य को धारण कर सकता है। स्वाधीनता को छोड़ना, पराधीनता मोल लेना कहाँ तक ठीक है ? प्रथम तो सबसे बड़ा पाप मिथ्यात्व है, जो सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वार्थों को और निजरूप को विपरीतता रहित और यथार्थता-भावभासन सहित जानना ही तत्त्वविचार के उद्यमरूप प्रथम नंबर का छोटा सा धर्म है। वीतरागतारूप चारित्र धर्म ऊँचे नम्बर का धर्म है, जो सम्यग्दर्शन के पश्चात् ही हो सकता है। कुछ समझे भैया!

भर्तृहरि टकटकी लगाकर सुन रहा था—अपने को अपने भीतर कुछ उजाला-सा होता मालूम दिया। किंतु मन में दुविधा का दुःख दूर नहीं हुआ था। शुभचंद्र कहते गये—क्योंजी, आपको सुवर्ण की ही चाह है ? तो लो कितना सोना चाहते हो ?

विशाल पत्थर पर अपनी चरण रज छोड़ दी! आश्चर्य... तपोबल की पवित्रता और पुण्य की अचिंत्य शक्ति!! वह सारा पत्थर सोना बन गया। भर्तृहरि आँखें फाड़े देखता भर रह गया-अचम्भित-सा।

हृदय भर आया उसका। भैया की सम्यक् रत्नत्रयरूप तपस्या ने मोह लिया। पैरों में गिरकर बोला—'मुझ डूबते को उबारिए—महाराज! मैं अपने को आपके चरण-शरण में अर्पण करता हूँ।'

तृप्ति हुई चिंता गई, मनुवा बेपरवाह।
जिन्हें कछू न चाहिए, सो शाहनपति शाह॥

[मूल लेखक श्री भगवत जैन हैं, सन्मति-संदेश के आधार से यह कथा कुछ आध्यात्मिक ढंग से नये रूप में दी गई है।] (परिवर्तनकार—श्री ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन)

—: आत्म-प्रशंसा :—

एक बड़े भारी योगी प्रायः 6-6 महीने की समाधि भूमि के अंदर रहकर लगाया करते थे। केवल एक दिन के लिए बाहर निकलकर राजा, मंत्री, हाकिमों और प्रजा को दर्शन देकर दूसरे दिन वापिस फिर जमीन के अंदर चले जाया करते थे। एक दिन राजा ने मंत्री से पूछा—यह साधु बिना कुछ खाये-पिये इसप्रकार कैसे जीवित रहता है? मंत्री ने बताया—महाराज, छह महीने बाद हजारों लोग मेरे दर्शनों को इकट्ठे मिलेंगे, यह लोकेषणा ही इसे जीवित रखती है और कुछ नहीं। राजा ने कहा—सो कैसे? मंत्री ने उत्तर दिया—तो आप ऐसा कीजिए कि अबके जिस दिन यह निकलनेवाला हो, उस दिन एक-एक मील तक फौज डालकर लोगों को समाधि तक पहुँचने से रोक दीजिए और फिर देखिये क्या तमाशा होता है! ऐसा ही किया गया। साधु ने समाधि से निकलकर जो देखा तो सुनसान नजर आया और वह वहीं हमेशा के लिये गश खाकर गिर पड़ा। तब राजा की समझ में आया कि आत्म-प्रशंसा से बचना आसान काम नहीं है। लोग-बाग नाहक नेताओं और पूंजीपतियों को कोसते हैं। काँटों की सेज पर सोना आसान है मगर एषणाओं से बचना बहुत कठिन है। ['पारसज्योति' पत्र से आधार उद्धृत]

एक अद्भुत महोत्सव

मृत्यु अर्थात् आराधना का महोत्सव

[समाधिमरण के लिये आराधक की शूरवीरता]

मृत्यु और वह भी महोत्सव!—इन दोनों का मेल कैसे होगा?—कदाचित ऐसा आश्चर्य हो। क्योंकि लोग तो मृत्यु के समय शोक करते हैं, मृत्यु कोई महोत्सव हो सकता है?—हाँ, आराधना के बल से मृत्यु का अवसर भी महोत्सवरूप बन जाता है। जिसने आराधना के महोत्सव सहित समाधिमरण किया, वह जीव प्रशंसनीय है। शरीरबुद्धिवाला जगत मृत्यु से डरता है, परंतु चैतन्य के साधक जीव को मृत्यु कोई दुःखदायक घटना नहीं है, उसके लिये तो वह आराधना का महोत्सव है। ऐसे महोत्सव का सुंदर वर्णन आप यहाँ पढ़ेंगे।

एक साधक जीव मृत्यु जैसी तीव्र प्रतिकूलता के बीच भी अपनी आराधना को कैसे बनाये रखता है, उसका सुंदर प्रोत्साहक वर्णन 'श्री भगवती आराधना' शास्त्र में किया है। भगवती आराधना आदि का अधार लेकर श्री पंडित सुरचंदजी ने 'मृत्यु-महोत्सव' की रचना की है, उसे यहाँ अर्थसहित दिया जाता है। यह रचना आराधक जीवों के हृदय में शूरवीरता जागृत करके आराधना के लिये प्रोत्साहित करती है।

(1) वंदूं श्री अरहंत परमगुरु, जो सबको सुखदाई,
इस जग में दुख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई;
अब मैं अरज करूँ प्रभु तुमसे, कर समाधि उरमांही,
अंत समय में यह वर मांगू, सो दीजै जन-राई।

सर्व जीवों को सुखदायक ऐसे श्री अरहंतदेव को नमस्कार करता हूँ। इस संसार में मैंने

जो दु:ख भोगे, उन्हें हे जिनदेव! आप जानते हैं; अब मैं आपसे प्रार्थना करता है कि अंत समय में मेरे अंतर में समाधि रहे—ऐसा वरदान दीजिये।

(2) भव-भव में तन धार नये मैं, भव-भव शुभ संग पायो,
भव-भव में नृप सिद्धि लई मैं, मात-पिता सुत थायो।
भव-भव में तन पुरुष-तनो धर, नारी हू तन लीनो,
भव-भव में मैं भयो नपुंसक, आतमगुन नहिं चीनों।

संसार में परिभ्रमण करते हुए मैंने भव-भव में नये-नये शरीर धारण किये; शुभ संगति भी प्राप्त की, राज्यऋद्धि भी मिली, माता, पिता, पुत्र हुआ; अनेकों बार पुरुष शरीर धारण किया, स्त्री भी अनेकों बार हुआ, नपुंसक भी हुआ—परंतु अपने आत्मगुण को मैंने नहीं पहिचाना।

(3) भव-भव में सुर-पदवी पाई, ताके सुख अतिभोगे,
भव-भव में गति नरकतनी धर, दुख पाये विधियोगे।
भव-भव में तिरयंच योनि धर, पायो दुख अतिभारी,
भव-भव में साधर्मी जन को, संग मिल्यो हितकारी।

अनेक भवों में मैंने देवपद प्राप्त किया और देवलोक के सुख भोगे, अनेक बार नरक में जाकर पापकर्मवश महा दु:ख प्राप्त किये; अनेक बार तिर्यंच गति धारण करके अति भारी कष्ट उठाये... अरे, अनेक भवों में मुझे साधर्मीजनों का हितकारी संग भी मिला।

(4) भव-भव में जिन-पूजन कीनी, दान सुपात्रहिं दीनो,
भव-भव में मैं समवसरन में, देख्यो जिन गुनभीनो।
एती वस्तु मिली भव-भव में, 'सम्यक् गुन नहिं पायो,
ना समाधि-युत मरन कियो मैं, तातैं जग भरमायो।

तथा भव-भव में मैंने जिनेन्द्र भगवान की पूजा की, सुपात्र को दान भी दिया और समवसरण में गुणधारी जिनेन्द्रदेव को अनेक बार देखा; इतनी वस्तुएँ तो मुझे कई भवों में मिलीं; परंतु मैं सम्यक्त्वगुण प्राप्त नहीं कर सका और न मैंने समाधिमरण किया, इसलिये संसार में भटकता फिरा।

(5) काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कु-मरन हि कीनो,
एक बार हू 'सम्यक्' युत मैं, निज-आतम नहिं चीनो।
जो निज-पर को ज्ञान होय तो, मरन समय दुख कांई,
देह विनाशी, मैं निज-भासी, ज्योति-स्वरूप सदाई।

अनादिकाल से संसार में भटकते हुए मैंने सदा कुमरण ही किये, एकबार भी सम्यक्त्व प्रगट करके मैंने अपने आत्मा को नहीं पहिचाना। यदि निज-पर का ज्ञान हो तो मृत्युकाल में दु:ख कैसा ? क्योंकि शरीर तो विनाशीक है और मैं सदा निज में रहनेवाला चैतन्यज्योतिस्वरूप हूँ।

(6) विषय-कषायन के वश ह्वैकैं, देह आपनो जान्यो,
कर मिथ्या सरधान हिये बिच, आतम नाहिं पिछान्यो।
यों क्लेश हिय धार मरन करि, चारों गति भरमायो,
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन ये, हिरदे में नहिं लायो।

अरे रे, विषय-कषायों के वश होकर मैंने शरीर को अपना माना; हृदय में मिथ्या श्रद्धा करके, आत्मा की पहिचान नहीं की। इसप्रकार अंतर में क्लेश धारण करके मरा और चारों गतियों में भटकता फिरा, परंतु मैंने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को हृदय में धारण नहीं किया।

(7) अब यह अरज करूँ प्रभु सुनिये, मरन समय यह मांगौं,
रोगजनित पीड़ा मत होवो, अरु कषाय मत जागौ।
ये मुझ मरन समय दुखदाता, इन हर, साता कीजै,
जो समाधियुत मरन होय मुझ, अरु मिथ्या गद छीजै।

हे प्रभो! अब मेरी प्रार्थना सुनो! मरणकाल में रोगजनित पीड़ा की ओर मेरा लक्ष न जाये और दु:खदायक कषायें जागृत न हों; दु:खदायक कषायें दूर हों और चित्त शांत हो, जिससे मेरा समाधिसहित मरण हो और मिथ्यात्वादि का नाश हो।—ऐसी आराधना हे नाथ! मुझे प्राप्त हो!

(8) यह तन सात कुधात-मयी है, देखत ही घिन आवै;
चर्म-लपेटी उपर सोहै, भीतर विष्टा पावै।

अति दुर्गंध अपावन सा यह, मूरख प्रीति बढ़ावै;
देह विनासी, जिय अविनासी, नित्य-सरूप कहावै।

यह शरीर तो जिनको देखते ही घृणा उत्पन्न हो, ऐसी सप्त कुधातुओं से भरा है; ऊपर चमड़ी लपेटा हुआ शोभायमान है, परंतु भीतर तो विष्टा भरा है। ऐसे अत्यंत दुर्गंधमय अपावन शरीर से यह मूर्ख जीव प्रीति बढ़ाता है; परंतु शरीर तो विनाशीक है और जीव अविनाशी नित्यस्वरूप है।

(9) यह तन जीर्ण कुटी सम आतम, यातैं प्रीति न कीजै,
नूतन महल मिलै जब भाई, तब यामें क्या छीजे?
मृत्यु होने से हानि कौन है, याको भय मत लावो,
समता से जो देह तजोगे, तो शुभ तन तुम पावो।

अरे आत्मा! जीर्ण झोंपड़ी समान इस शरीर में प्रीति न कर। इसे छोड़कर स्वर्ग में जाने पर तुझे नया महल मिलेगा, तब फिर इसमें तू क्यों मोह कर रहा है? मरण से तेरी कोई हानि होनेवाली नहीं है, इसलिये तू मरण का भय मत कर। यदि तू समतापूर्वक शरीर छोड़ेगा तो देवलोक में उत्तम शरीर प्राप्त करेगा।

(10) मृत्यु-मित्र उपकारी तेरो, इस अवसर के माहीं,
जीरन तन से देत नयो यह, या सम साहू नाहीं।
या सेती इस मृत्युसमय पर, उत्सव ही अति कीजै,
क्लेश-भाव को त्याग सयाने, समता-भाव धरीजै।

अरे, मृत्यु तो इस अवसर पर तेरा मित्र-उपकारी है, क्योंकि इस जीर्ण शरीर के बदले नया शरीर देती है; इससे अच्छा कोई साहूकार नहीं है। इसलिये इस मृत्यु-समय पर उत्सव करना चाहिये। हे सयाने! इस अवसर पर क्लेश भाव को छोड़कर समताभाव धारण करना चाहिये।

(11) जो तुम पूरव पुण्य किये हैं तिनको फल सुखदाई,
मृत्यु-मित्र बिना कौन दिखावै स्वर्ग-सम्पदा भाई।
राग-रोष को छोड़ सयाने, सात व्यसन दुखदाई,
अंत समय में समता धारो, पर-भव-पंथ सहाई।

हे भाई! पूर्वकाल में तुमने जो पुण्य किये हैं, उनके सुखदाई फलरूप स्वर्ग-संपदा तुम्हें मृत्युरूपी मित्र के बिना कौन देगा? इसलिये हे भव्य! मरण-काल में राग-द्वेष तथा दु:खदायक सप्त व्यसनों को छोड़कर समताभाव धारण करो कि जो परभव के पंथ में तुम्हें सहायक होगी।

(12) कर्म महादुठ वैरी मेरो, ता सेती दुख पावै,
तन-पिंजर में बंध कियो मोहि यासों कौन छुड़ावै।
भूख-तृषा दुख आदि अनेकन, इस ही तन में गाढ़ै,
मृत्यु-राज अब आय दयाकर, तन पिंजरसों काढ़ै।

महा दु:खदायक कर्म मेरा शत्रु है, उसके संग से जीव दु:ख प्राप्त करता है और उसने मुझे इस तनरूपी पिंजरे में बन्द किया है; इसमें से मुझे कौन छुड़ायेगा? इस शरीर में तो भूख-प्यास आदि अनेक दु:ख भरे हैं, अब मृत्युराज दया करके इस तन-पिंजरे से मुझे छुड़ाने आये हैं।

(13) नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तन को पहराये,
गंध सुगंधित अतर लगाये, षट्रस अशन कराये।
रात दिना मैं दास होयकर, सेव करी तन केरी,
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रह्यो निधि मेरी।

मैंने इस शरीर को नाना प्रकार के वस्त्राभूषण पहिनाये, सुगंधित इत्र तेल लगाये और षट्रस भोजन कराये; दिन-रात इसका दास बनकर मैंने इस शरीर की सेवा की, फिर भी अरे रे! यह शरीर मुझे आत्महित में काम न आया! मैं अपनी निधि को भूला रहा।

(14) मृत्यु-राय को सरन पाय तन नूतन ऐसो पाऊँ,
जामें सम्यकरतन तीन लहि, आठों कर्म खपाऊँ।
देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहि सुन्यो जगमाहीं,
मृत्युसमय में ये ही परिजन, सब ही हैं दुखदाई।

इस शरीर के समान कृतघ्नी जगत में दूसरा कोई देखा या सुना नहीं है; यह परिजन आदि सब मृत्यु के समय दु:ख देनेवाले हैं। अब मृत्युराज की शरण पाकर मैं ऐसा नया शरीर

प्राप्त करूँगा जिसमें सम्यक्रत्नत्रय प्रगट करके आठों कर्मों का क्षय कर दूँगा।

(15) यह सब मोह बढ़ावनहारे, जियको दुरगति दाता,
इनसे मोह निवारो जियरा, जो चाहो सुख-साता।
मृत्यु-कल्पद्रुम पाय सयाने, मांगो इच्छा जेती,
समता धरकर मृत्यु करो तो, पावो संपत्ति तेती।

यह शरीर-कुटुंबादि मोह बढ़ानेवाले और इस जीव को दुर्गति देनेवाले हैं, इसलिये हे जीव! यदि तू सुख-शांति चाहता हो तो इनका मोह छोड़ दे! इस मृत्युरूपी कल्पवृक्ष को पाकर हे सुज्ञ! तेरी जितनी इच्छा हो, उतना माँग... यदि तू समतापूर्वक मरण करेगा तो तुझे तेरी इच्छित संपदा प्राप्त होगी।

(16) चौ आराधन सहित प्रान तज, तौ ये पदवी पावो,
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग-मुक्ति में जावो।
मृत्यु-कल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मंझारे,
ताको पाय कलेस करो मत, जन्म-जवाहर हारे।

यदि सम्यक्त्वादि चार आराधनासहित प्राण छोड़ोगे तो बलदेव-चक्रवर्ती-इन्द्र-तीर्थंकर आदि पद प्राप्त करोगे और स्वर्ग-मुक्ति में जाओगे। इस प्रकार तीनों लोक में मृत्युरूपी कल्पवृक्ष समान दूसरा कोई दाता नहीं है; इसलिये उसे पाकर क्लेश न करो। क्लेश से तो यह जन्मरूपी जवाहर हार जाते हैं।

(17) इस तन में क्या राचै जियरा, दिन-दिन जीरन होहै,
तेज-कांति-बल नित्य घटत है, या सम अस्थिर को है।
पांचों इन्द्री शिथिल भई अब, सांस शुद्ध नहिं आवै,
तापर भी ममता नहिं छोड़े, समता उर नहिं लावै॥

अरे जीव! इस शरीर में तू क्यों लीन हो रहा है?—यह तो दिन-प्रतिदिन जीर्ण हो रहा है, इसकी कांति, बल नित्य घट रहे हैं; इसके समान अस्थिर दूसरा कोई नहीं है। अब तो पाँचों इन्द्रियाँ शिथिल हो गईं, श्वास भी बराबर नहीं लिया जाता; अरे! तब भी तू इसकी ममता क्यों नहीं छोड़ता? और अंतर में समता क्यों धारण नहीं करता?

(18) मृत्युराज उपकारी जियको, तनसों तोहि छुड़ावै,
नातर या तन बंदीगृह मैं, पड़ौ-पड़ौ बिललावै।
पुद्गल के परमानू मिलकें, पिण्डरूप तन भासी,
ये तो मूरत मैं हूँ अमूरत, ज्ञान-जोति गुन खासी।

अहा, मृत्युराज तो उपकारी हैं कि तुझे इस शरीर से छुड़ा रहे हैं; नहीं तो तू इस तनरूपी कारागृह में पड़ा-पड़ा बिललाता! पुद्गलपरमाणुओं के मिलने से यह शरीररूपी पिण्ड बना है जो कि मूर्त है और मैं तो ज्ञानज्योतिरूप विशेष गुणवाला अमूर्त आत्मा हूँ।

(19) रोग-शोक आदिक जो वेदन, ते सब पुद्गल लारे,
मैं तो चेतन व्याधि बिना नित, हैं सो भाव हमारे।
या तनसों इस क्षेत्र-संबंधी, कारन आन बन्यो है,
खान-पान दे याको पोस्यो, अब समभाव ठन्यो है।

रोग-शोक आदि का जो वेदन है, वह सब पुद्गल के संबंध से हैं; मैं चेतन हूँ, मेरा स्वभाव तो सदा व्याधिरहित है; इस शरीर के साथ इस भवपर्यंत संबंध हुआ है; इसे खिला-पिलाकर अभी तक पोषा; अब समाधिमरण के लिये मुझे समभाव जागृत हुआ है।

(20) मिथ्यादर्शन, आतमज्ञान बिन, यह तन अपनो जान्यो,
इन्द्री-भोग गिने सुख मैंने, आपो नाहिं पिछान्यो।
तन बिनसनतें नाश जानि निज, यह अयान दुखदाई,
कुटुम्ब आदि को अपनो जान्यो, भूल अनादि छाई।

आत्मा के ज्ञान बिना मिथ्यादर्शन से मैंने इस शरीर को अपना जाना, इन्द्रिय-भोगों में मैंने सुख माना, परंतु आत्मा का स्वरूप नहीं जाना। शरीर का नाश होने से अपना ही नाश समझकर अज्ञान से मैं दुःखी हुआ; कुटुंबादि को मैंने अपना मान्या—इसप्रकार अनादि से मैंने भूल की है।

(21) अब निज भेद जथारथ समझो, मैं हूँ जोति-सरूपी
उपजै-बिनसै सो यह पुद्गल, जान्यो याको रूपी।

इष्टऽनिष्ट जेते सुख-दुख हैं, सो सब पुद्गल सागैं,
मैं जब अपनो रूप विचारूँ, तब ये सब दुख भागैं॥

अब मैं अपना सच्चा स्वरूप समझा। मैं ज्ञानस्वरूपी हूँ और जिसकी उत्पत्ति-विनाश होता है, वह पुद्गल है, उसे मैं रूपी जानता हूँ। जो भी इष्ट-अनिष्ट सुख-दुःख हैं, वह सब पुद्गल के संबंध से हैं; परंतु जब मैं अपने स्वरूप का विचार करता हूँ, तब यह सब दुःख भाग जाते हैं।

(22) बिन समता तन ऽनन्त धरे मैं, तिनमें ये दुख पायो,
शस्त्रघाततें ऽनन्त बार मर, नाना योनि भ्रमायो।
बार अनंतहि अग्नि माहिं जर, मूवो सुमति न लायो,
सिंह व्याघ्र अहिऽनंत बार मुझ, नाना दुःख दिखायो।

समता के बिना मैंने अनंत शरीर धारण किये और उनमें अनेक दुःख पाये;—अनंत बार शस्त्राघात से मरा और दुर्गति में भटका; अनंतबार अग्नि में जल मरा, परंतु मैंने सुमति प्राप्त नहीं की; सिंह-बाघ और सर्पों ने मुझे अनंत बार नाना प्रकार से दुःख दिये।

(23) बिन समाधि ये दुःख लहे मैं, अब उर समता आई,
मृत्युराज कौ भय नहिं मानो, देवै तन सुखदाई।
यातैं जब लग मृत्यु आवै, तब लग जप तप कीजै,
जप-तप बिन इस जग के माहीं, कोई भी नहिं सीजै॥

यह सब दुःख मैंने समाधि बिना पाये; अब मेरे अंतर में समता प्रगट हुई है, अब मुझे मृत्युराज का भय नहीं है, वह तो नवीन सुखदायक शरीर (स्वर्ग) देनेवाले हैं। इसलिये जब तक मृत्यु न आये, तब तक जप-तप करना योग्य है; जप-तप के बिना इस जगत में कोई कल्याण को प्राप्त नहीं होता।

(24) स्वर्ग-संपदा तपसों पावै, तपसों कर्म नसावै,
तप ही सों शिव-कामिनि पति ह्वै, यासों तप चित्त लावै।
अब मैं जानी समता बिन मुझ, कोऊ नाहिं सहाई,
मात-पिता सुत-बांधव तिरिया, ये सब हैं दुखदाई॥

स्वर्ग-संपदा की प्राप्ति तप से होती है, तप द्वारा ही कर्मों का नाश होता है, तप से ही मोक्षलक्ष्मी प्राप्त होती है, इसलिये तप में चित्त को लगाना चाहिये। अब मैंने जान लिया है कि समता के बिना दूसरा कोई मुझे सहायक नहीं है; माता-पिता-पुत्र-बंधुजन-स्त्री, सबका मोह दुःखदायी है।

(25) मृत्यु समय में मोह करे ये, तातें आरत हो है,
आरततैं गति नीची पावै, यों लख मोह तज्यो है
और परिग्रह जेते जग में, तिनसों प्रीत न कीजै,
परभव में ये संग न चालैं, नाहक आरत कीजै।

मृत्युकाल में उनका मोह करने से आर्तध्यान होता है और आर्तध्यान से जीव नीचगति पाता है—ऐसा समझकर मैंने मोह छोड़ दिया है। जगत में दूसरे भी जो परिग्रह हैं, उनका भी मोह नहीं करना चाहिये, क्योंकि वे कोई परभव में जीव के साथ नहीं आते, फिर व्यर्थ आर्तध्यान क्यों करना?

(26) जे जे वस्तु लखत है ते पर, तिनसों नेह निवारो,
पर गति में ये साथ न चालैं, ऐसो भाव विचारो।
जो परभव में संग चलैं तुझ, तिनसों प्रीत सु कीजै,
पंच पाप तज, समता धारो, दान चार विध कीजै।

बाह्य में जो-जो वस्तुएँ दिखायी देती हैं, वे सब पर हैं; वे परभव में साथ नहीं आती—ऐसा विचार करके उनका ममत्व छोड़ दो। प्रीति तो उनसे करना चाहिये जो परभव में साथ चलें। इसलिये पाँच पापों को छोड़कर समता धारण करो और चार प्रकार के दान दो।

(27) दशलक्षण-मय धर्म धरो हिय, अनुकंपा उर लावो,
षोडशकारण नित्य विचारो, द्वादश भावन भावो।
चारों परवी प्रोषध कीजै, अशन रात को त्यागो,
समता धर दुरभाव निवारो, संयमसों अनुरागो।

अंतर में अनुकंपा लाकर दशलक्षणमय धर्म धारण करो; नित्य सोलह कारण का चिंतवन करते हुए बारह भावनाएँ भाओ; चारों पर्व-तिथियों में प्रोषध करते हुए रात्रिभोजन को

छोड़ो; समता धारण करके दुर्भाव का निवारण तथा संयम से अनुराग करो।

(28) अंत समय में यह शुभभाव हि, होवे आन सहाई,
स्वर्ग-मोक्ष-फल तोहि दिखावें, ऋद्धि देहिं अधिकाई।
खोठे भाव सकल जिय त्यागो, उर में समता लाके,
जा सेती गति चार दूर कर, बसहु मोक्षपुर जाके।

ऐसी उत्तम भावना हो अंत समय में तुझे सहायक होगी; वही तुझे स्वर्ग-मोक्ष को प्राप्ति करायेगी और महान ऋद्धि देगी। इसलिये हे जीव! तू अंतर में समता लाकर सर्व मिथ्याभावों को छोड़ और उस समता द्वारा चारों गति को दूर करके मोक्षपुरी में जाकर निवास कर।

(29) मन थिरता करके तुम चिन्तो, चौ-आराधन भाई,
ये ही तोकों सुख की दाता, और हितू कोउ नहीं।
आगें बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी,
बहु उपसर्ग सहे शुभ भावन, आराधन उर धारी।

हे भाई! मन को स्थिर करके तुम चार आराधना का चिंतन करो; वही तुम्हें सुखदाता हैं, अन्य कोई हितकारी नहीं है। पूर्वकाल में अनेक मुनिराज हो गये हैं, जिन्होंने महान स्थिरता धारण की और अनेक उपसर्ग आने पर भी उन्हें उत्तम भावनापूर्वक सहन करके, अंतर में अखंड आराधना धारण की।

(30) तिनमें कछुइक नाम कहूं मैं, सो सुन जिय चित लाके,
भावसहित अनुमोदै जो जन, दुर्गति होय न ताके।
अरु समता निज उर में आवे, भाव अधीरज जावे,
यों निशदिन जो उन मुनिवरकौ, ध्यान हिये विच लावे।

उन आराधक मुनियों में से कुछ के नाम यहाँ कहता हूँ; उन्हें सुनकर, चित्त में लाकर जो जीव भावसहित अनुमोदन करते हैं, उन्हें कभी दुर्गति नहीं होती। उन मुनिवरों को निशदिन जो अपने हृदय में ध्याते हैं, उन्हें अंतर में समता प्रगट होती है और अधैर्यभाव दूर हो जाता है।

(31) धन्य-धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसी धीरज धारी,
एक स्यालिनी जुग बच्चा-जुत, पाँव भख्यो दुखकारी।

यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी,
तौ तुमरे जिय कौन दु:ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी।

अहा, धन्य हैं वे सुकुमाल महामुनि—उन्होंने कितना अद्‌भुत धैर्य धारण किया था! एक सियालिनी अपने दो बच्चों सहित उनका पैर खा गई.... ऐसा भीषण उपसर्ग भी उन्होंने स्थिरता से शांतिपूर्वक सहन करके अपने चित्त में आराधना धारण की... तो अरे जीव! तुझे तो क्या दु:ख है ? तू मृत्यु को महान महोत्सव समझकर अपना चित्त आराधना में लगा।

[—शेष अगले अंक में]

ज्ञान की अनुभूति, वह मोक्ष का मार्ग

[गतांक में आपने 'आत्मसाधना की रीति' पढ़ी थी; यहाँ उसके दूसरे भाग में ज्ञान के अनुभव का सुंदर वर्णन पढ़ने से मुमुक्षु की परिणति में अनुभूति का उल्लास जागृत होगा। राजकोट में पूज्य स्वामीजी द्वारा दिये गये श्री समयसार की 17-18वीं गाथा के यह प्रवचन हैं।]

जिसको दु:ख से छूटकर आत्मा के परम आनंद की प्राप्ति का प्रयोजन है, वह जीव आत्मा का अर्थी होकर नि:शंकरूप से अनुभव द्वारा उसकी सेवा करता है। मोक्षार्थी को पहले शुभरागादि अन्य कुछ करने को नहीं कहा, परंतु पहले ही आत्मा को जानकर-पहिचानकर उसका अनुभव करना कहा है। पहले शास्त्रादि से सामान्य जानकारी हो, उसकी बात नहीं है किंतु स्वानुभवपूर्वक जानना, वही सच्चा ज्ञातृत्व है।

प्रत्येक जीव ज्ञातास्वरूप ही है; परंतु 'यह जो जाननेरूप चेतनभाव है, वही मैं हूँ'—इसप्रकार अनुभूतिस्वरूप से स्वयं अपने को जाने, तब आत्मा जाना कहा जाता है और

तब ज्ञानी की सेवा की कही जाती है। ज्ञान की ऐसी सेवा ही ज्ञानी की सच्ची सेवा है।

आत्मा को 'राजा' कहा; राजा अर्थात् श्रेष्ठ। ज्ञातास्वभावी आत्मा ही सर्वश्रेष्ठ है, उच्च है, ऊर्ध्व है। ज्ञान की ऊर्ध्वता है; वह रागादि को जानने से उनमें एकमेक कहीं हो जाता परंतु उनसे पृथक् रहता है—ऐसी उसकी ऊर्ध्वता है। परंतु 'यह रागादिभाव मैं हूँ'—ऐसा अज्ञानी अनुभव करता है, इसलिये राग से भिन्न ज्ञान का वह सेवन नहीं करता। धर्मी तो राग को जानते हुए भी 'यह जो चेतनभावरूप से अनुभव में आता है, वही मैं हूँ, रागादि मैं नहीं हूँ'—इसप्रकार भेदज्ञान द्वारा ज्ञान का ही सेवन करते हैं। ऐसी सेवा, यह मोक्ष को साधने का उपाय है।

जो रागादि अन्य भाव हैं, वे कहीं चेतनरूप से अनुभव में नहीं आते। द्रव्य-गुण के स्वभाव में तो रागादि नहीं हैं और पर्याय में चेतनभावरूप से आत्मा परिणमित होता है, उस चेतनभाव में रागादि नहीं है—इसप्रकार पर्याय में भी चेतन और राग की भिन्नता है। जो ज्ञानरूप से ज्ञात होता है, ज्ञानरूप से ही स्वाद में आता है, उसका संबंध मेरे स्वभाव के साथ है; ज्ञान में जो रागरूप से ज्ञात होता है, उसका संबंध मेरे स्वभाव के साथ नहीं है। इसप्रकार ज्ञान और राग को भिन्न-भिन्न अनुभव में लेने से ज्ञानी को आत्मज्ञान उदित होता है; उस ज्ञान के साथ ही उसकी निःशंक प्रतीति वर्तती है और ज्ञान-श्रद्धापूर्वक उसी में स्थिर होने से परम आनंद का अनुभव होता है।—इसप्रकार साध्य की सिद्धि होती है।

जड़ और चेतन, ज्ञान और राग, आकुलता और शांति—ऐसे अनेक भाव हैं; उनमें 'मैं तो ज्ञान हूँ, ज्ञान और शांतिमय जो चेतनभाव है, वही मैं हूँ; चेतनपने में विस्तरित भाव, वह आत्मा है, उतना ही मैं हूँ और चेतनता से बाह्य ऐसे रागादि अन्यभाव, वह सच्चा आत्मा नहीं है, वह मेरा स्वरूप नहीं है;'—इसप्रकार धर्मी अपने को ज्ञान को अनुभूतिरूप जानता है। ऐसी अनुभूति में कहीं अकेला ज्ञान नहीं हे, आत्मा के अनंतगुणों की निर्मलता का उसमें वेदन है। ऐसे वेदनपूर्वक आत्मा को जाना, वह सच्चा ज्ञान है और उसी को सच्चे आत्मा की श्रद्धा होती है। जिसे जाने उसकी श्रद्धा कर सकता है; वस्तु को जाने बिना श्रद्धा किसकी ? जाने हुए का ही श्रद्धान होता है—ऐसा कहने से कहीं श्रद्धा का मूल्य कम नहीं हो जाता। आत्मवस्तु परभाव से भिन्न, कैसी और कितनी महान है, वह जब ज्ञान में आती है, उसी समय ज्ञानी को उसकी श्रद्धा होती है कि 'यह वस्तु मैं हूँ' और उसी समय निर्विकल्प अनुभूति भी होती है। इसप्रकार आत्मा

का सच्चा ज्ञान, सम्यग्दर्शन और अनुभव एकसाथ ही होते हैं। ऐसे अनुभवज्ञान को ही यहाँ ज्ञान कहा है। ऐसा ज्ञान पहले कभी एक क्षण भी जीव ने नहीं किया। ऐसे ज्ञान के बिना कोई कहे कि हमें आत्मा की श्रद्धा हो गई है—तो उसकी श्रद्धा तो गधे के सींगों की श्रद्धा जैसी मिथ्या है। आत्मा कैसा है, वह जाना ही नहीं तो तूने श्रद्धा किसकी की ? आत्मा का अचिंत्य गंभीर स्वभाव जैसा है, वैसा जानने में आये, उसी क्षण परिणाम रागादि से भिन्न होकर चैतन्यस्वभावोन्मुख हुए बिना नहीं रहते। ऐसे भेदज्ञान सहित ज्ञान-दर्शन-चारित्र प्रगट होते हैं और शुद्ध आत्मा की सिद्धि होती है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार से आत्मा की साधना नहीं होती और धर्म नहीं होता।

अहा, ज्ञान का अस्तित्व कैसा है, उसकी जीवों को खबर नहीं है। ज्ञानस्वरूप से ही अपना अस्तित्व है, उसके बदले विकल्प में अपना अस्तित्व मानकर रुक गये हैं, इसलिये भिन्न ज्ञान का अत्यंत मधुर चैतन्यस्वाद उन्हें नहीं आता, इसलिये आत्मा के सच्चे स्वरूप का अनुभव नहीं होता, रागादि अशुद्धभावरूप ही वे अपना अनुभव करते हैं।—ऐसे जीवों को साध्य आत्मा की सिद्धि नहीं होती। रागादि समस्त विभावों से भिन्न, चेतनस्वभावरूप जो अनुभव में आता है, वही मैं हूँ—ऐसे भिन्न आत्मा के अनुभव में तो आत्मा के अनंत गुणों का स्वाद समा जाता है। ऐसे स्वरूप से जहाँ आत्मा को पहिचाना, वहाँ जीव स्वयं अपने स्वरूप में निःशंक स्थिर होने में समर्थ हुआ। इसप्रकार भेदज्ञान द्वारा उसे साध्य आत्मा की सिद्धि होती है।

ज्ञान के अनुभव से रहित पर की चाहे जितनी जानकारी हो, उसे ज्ञान कहते ही नहीं, उसमें ज्ञान का सेवन नहीं है, उसमें तो रागादि परभाव का सेवन है। भाई, तूने शास्त्र भले पढ़े; परंतु शास्त्रों में कहा हुआ जो राग से भिन्न ज्ञान, उस ज्ञान का सेवन तूने कभी नहीं किया और तब तक तेरी श्रद्धा या आचरण भी सच्चा नहीं होता। आत्मा के ज्ञान का सेवन तो राग से पार है और शास्त्रों के परलक्षी ज्ञातृत्व से भी पार है; वह तो अंतर की अतीन्द्रिय वस्तु है। आत्मा को जानता हो तो अतीन्द्रिय-प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा ही वह ज्ञात होता है। अतीन्द्रिय ज्ञानसहित श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है और तत्पश्चात् चारित्रदशा होती है। जिसे चारित्रदशा हुई, वह तो भगवान हो गया। चारित्र की महिमा की जगत को खबर नहीं हैं; चारित्र से पूर्व आत्मा के ज्ञान-श्रद्धान कैसे होते हैं, उसकी भी जगत को खबर नहीं है। यह तो आत्मसाधना का अलौकिक अंतरंगमार्ग है, जिसके फल में सादि-अनंत काल तक अनंत सुख का अनुभव है। ●

भगवान महावीर द्वारा साधा गया
और
दर्शाया गया आत्मा का स्वभाव

[वांकानेर (सौराष्ट्र) में महावीर जयंती के अवसर पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन]

आज भगवान महावीर का मंगल जन्म-दिवस है। वे तीर्थंकर हुए उससे पूर्व अनादि-संसार में परिभ्रमण करते-करते एक भव में सम्यग्दर्शन प्राप्त किया और फिर उन्नतिक्रम में आगे बढ़ते-बढ़ते तीसरे पूर्वभव में मुनिदशा में सोलहकारणभावनापूर्वक उन्हें तीर्थंकर प्रकृति का बंध हुआ; फिर अंतिम भव में इस भरतक्षेत्र में अंतिम तीर्थंकर के रूप में अवतरित हुए; इन्द्रों ने उनका जन्म-कल्याणक महोत्सव मनाया; उसका आज दिवस है। भगवान के आत्मा को सम्यग्दर्शन तथा अवधिज्ञान तो जन्म से ही थे, पश्चात् तीस वर्ष की उम्र में कुमार अवस्था में उन्हें जातिस्मरण ज्ञान हुआ। पूर्वभवों में आत्मा कहाँ था, वह देखा और वैराग्य में एकदम वृद्धि हो गई, जिससे दीक्षा लेकर मुनि हुए। मुनि होकर आत्मा के ज्ञान-ध्यानपूर्वक साढ़े बारह वर्ष तक तप करते-करते केवलज्ञान प्रगट किया और अरिहंत परमात्मा हुए। पश्चात् आत्मानंद में झूलते-झूलते भगवान केवलज्ञान को प्राप्त हुए। केवलज्ञान होने के पश्चात् उन वीरनाथ भगवान ने कैसा आत्मस्वभाव दर्शाया उसका यह वर्णन है।

मैं ज्ञानस्वभावी हूँ—ऐसा जिसने श्रुत के अवलंबन से निर्णय किया है, वह जीव जब मति-श्रुत को अंतर्मुख करके अंतर में आनंद के नाथ से भेंट करता है, चैतन्य भगवान का स्पर्श करता है, तब नयों के सर्व विकल्पों से वह पृथक् हो जाता है और निर्विकल्परूप से विज्ञानघन स्वभाव में पहुँच जाता है।

नयपक्ष के विकल्परहित आत्मा स्वानुभव के आनंद से स्वयं सुशोभित होता है। जिसप्रकार भगवान अरिहंतदेव का शरीर वस्त्राभूषण रहित ही स्वयं शोभायमान होता है, उसीप्रकार चैतन्यतत्त्व स्वयं स्वभाव से ही ज्ञान-आनंदमय है; अपने ज्ञान-आनंद द्वारा वह स्वयमेव सुशोभित होता है। ऐसे चैतन्यतत्त्व की शोभा के लिये किसी विकल्प के आभूषण

की आवश्यकता नहीं होती। विकल्प लक्षण द्वारा भगवान आत्मा लक्षित नहीं होता; विकल्प से भिन्न हुआ जो ज्ञान, उस ज्ञान-आभूषण द्वारा आत्मा शोभायमान होता है, उस ज्ञानलक्षण द्वारा भगवान आत्मा लक्षित होता है। ऐसे आत्मा को लक्ष में लेना, वह भगवान महावीर का संदेश है। ऐसी आत्मविद्या, वह भारत की अपनी विद्या है। ऐसी अध्यात्मविद्या ही भारत की मुख्य विद्या है।

अहा, सम्यग्दर्शन होने से आत्मा भगवान हो गया। सम्यग्दर्शन होने से स्वसंवेदन ज्ञान में आत्मा का प्रत्यक्ष वेदन होता है। जिसने ऐसा वेदन किया, वह जीव वीर के मार्ग में आ गया। धर्मी की अनुभूति में विकल्प न होने पर स्वयं अपना आनंदरूप वेदन करता है। विकल्प का तिनका हट जाने से आत्मा का बड़ा पहाड़ उसे दृष्टिगोचर होता है। अरे, मैंने अपने चैतन्य भगवान को, अपने आनंद के सागर को अपने में देख लिया; मैंने विकल्परहित अपने आत्मरस का आस्वादन कर लिया, आत्मानंद का स्वाद लेने के लिये किन्हीं विकल्पों की आवश्यकता नहीं होती; अपने विकल्प रहित चैतन्यरस का स्वाद अपने में आ रहा है।—ऐसी आत्मानुभूति हुई, वह वीर का मार्ग है। आत्मा स्वयं वीर होकर वीर के मार्ग पर चला जाता है।

जिसे विकल्प के साथ कर्ताकर्मपना है, वह जीव निर्विकल्प आत्मा का अनुभव नहीं कर सकता; उसे सम्यक्त्व के आनंद का स्वाद नहीं आता। जो जीव विकल्प से छूटकर ज्ञानभावरूप परिणमित हुआ है, वह विकल्प को नहीं करता, वह विकल्प से पृथक् का पृथक् ज्ञानभावरूप ही रहता है। सम्यक्त्वादि ज्ञानभावरूप रहना और विकल्प का कर्ता भी होना—यह दो बातें एकसाथ नहीं हो सकतीं। जो ज्ञाता है, वह विकल्प का कर्ता नहीं है और जो कर्ता है, वह ज्ञाता नहीं है। ज्ञान में विकल्प नहीं है, विकल्प में ज्ञान नहीं है।—इसप्रकार विकल्प और ज्ञान की भिन्नता करके ज्ञानरूप परिणमित होना, वह वीर का मार्ग है। वीर का मार्ग अप्रतिहत है। महावीर परमात्मा का कहना है कि—हे जीव! तेरे चैतन्य में विकल्प का प्रवेश नहीं है। ऐसे चैतन्यस्वभाव का निर्णय करके उसका ज्ञान में ग्रहण कर... वहाँ विकल्प टूटकर आनंद के नाथ से तेरी भेंट होगी। कहा है कि:—

'हरि का मारग है शूरों का, नहि कायर का काम।'

हरि का मार्ग अर्थात् महावीर का मार्ग; ज्ञान और राग की भिन्नता जानकर जिसने अज्ञान

को हरा, वह हरि है। भगवान महावीर ने ऐसा मार्ग बतलाया है। यह वीतरागी वीर का मार्ग है, शूरवीर का मार्ग है। शुभ विकल्प करते-करते प्राप्त हो जाये, ऐसा यह मार्ग नहीं है। जो विकल्प के कर्तृत्व में रुके हैं, वे तो कायर हैं, ऐसे कायर जीव वीर के वीतरागमार्ग को प्राप्त नहीं कर सकते।

मैं आनंद का वेदन करनेवाला हूँ, विकल्प का वेदन करनेवाला मैं नहीं हूँ—ऐसा आत्मसाक्षात्कार धर्मी को हुआ है, उसे अपने अंतर में परमात्मा का साक्षात्कार हो गया है। परमात्मतत्त्व के अनुभव में चैतन्यरस रहा और विकल्प का रस निकल गया—इसका नाम भेदज्ञान है। भेदज्ञानपर्यायसहित भगवान स्वयं पवित्र पुराणपुरुष है। उसने परमात्मा का कथन स्वीकार कर लिया है, परमात्मा ने जो कहा, उसका उसने अपने में अनुभव कर लिया है और अब वह अल्पकाल में मोक्षलक्ष्मी का वरण करेगा। मोक्ष को प्राप्त करते हुए उसकी परिणति पराङ्मुख नहीं होगी... वीर भगवान के अप्रतिहत मार्ग पर चलकर वह मोक्षलक्ष्मी का वरण करेगा।

★ ★ ★

भगवान महावीरादि सर्वज्ञ भगवंतों ने जगत का स्वरूप साक्षात् देखा; उसमें सर्व पदार्थों का द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप देखा है; वस्तु ध्रुवरूप से स्थिर रहकर अपनी पर्यायरूप होती है, उस पर्याय का कर्ता आत्मा स्वयं है। ऐसा वस्तुस्वरूप जाने बिना आत्मा का अनुभव नहीं होता। एकांत ध्रुव या एकांत क्षणिक वस्तु माने तो उसे आत्मानुभव करने का अवसर नहीं रहता। तथा ईश्वर इस आत्मा का कर्ता है—ऐसा माननेवाले को भी 'अपना आत्मा ही परमात्मा है'—ऐसी पहिचान का अवकाश नहीं रहता। यहाँ तो—आत्मा के स्वरूप का ज्ञान में यथावत निर्णय करके जिसने उसका अनुभव किया है, वह जीव कैसा है ?—उसका वर्णन है। बाह्य कार्यों की तो बात ही क्या, अंतर के एक सूक्ष्म विकल्प का भी काम उसके ज्ञान में नहीं है; ज्ञान अंतरोन्मुख होकर विज्ञानरसरूप हो गया है।

ज्ञानी हुआ, वह जानता है कि पहले अज्ञानदशा में मैं अपने ज्ञानानन्दस्वभाव से भ्रष्ट होकर विकल्प के वन में भटकता था; अब उन विकल्पों से दूर होकर, भेदज्ञानरूपी अंतर्मुखी मार्ग द्वारा मैं अपने चैतन्यरस के समुद्र में ढला हूँ; मेरी ज्ञानधारा ज्ञानरसरूप ही परिणमित होती

है। मेरे ज्ञानरस के महाप्रवाह में विकल्पों का एक अंश भी नहीं है। इसप्रकार ज्ञान और विकल्प के बीच कर्ता-कर्मपना छूट गया है। अब ज्ञान अपने रस में ही निमग्न रहता हुआ विकल्पों के मार्ग से दूर से ही विमुख हो गया है—लौट गया है। विकल्प के काल में ज्ञान तो ज्ञानरसरूप ही रहता है, वह विकल्प की ओर जरा भी आकर्षित नहीं होता। अहा, ज्ञान के रसिक जीवों ने चैतन्य का ऐसा मार्ग देखा है। भगवान ने ऐसा मार्ग बतलाया है। यह महावीर के मार्ग का मधुर प्रवाह है।

अरे जीव! एकबार यह वीर की वाणी सुन तो सही! वीरनाथ का संदेश है कि तेरा आत्मा ही ऐसा आनंदस्वरूप है जिसे जानने से उसमें तन्मय होकर परम सुख का स्वाद आता है। परोन्मुख होकर पर को जानने से कहीं सुख का वेदन नहीं होता। आत्मा ही स्वयं ऐसा सारभूत है कि जिसे जानने से सुख प्राप्त होता है। आत्मा को जानने से विकल्पों का जाल टूट जाता है। ज्ञान का ज्ञानरस में आना तो सहज है, उसमें विकल्प का बोझ नहीं है।—ऐसे ज्ञानरस में निमग्न होने पर हे जीव! तुझे आनंद का तथा शांति का अनुभव होगा। जिसप्रकार पानी को ढलान मिलने से वह सहजरूप से उस ओर मुड़ जाता है, उसीप्रकार आत्मा की चैतन्यपरिणति को भेदज्ञानरूपी ढलान मिला, वहाँ उसका विकल्प के वन में अटकना रुक गया और सहजरूप से अंतर में ढलकर वह अपने आनंदसमुद्र में लीन हो गई। अहा, यह तो सम्यग्दृष्टि का अपने में देखा हुआ मार्ग है...

वीर का मार्ग तो अंतर का गंभीर मार्ग है; पुण्य-पाप तो ऊपर की छिछली वृत्तियाँ हैं; उनसे दूर जाकर अर्थात् विवेक द्वारा विकल्प से भिन्न आत्मा को जानकर, चैतन्यस्वरूप की गहराई में उतरते ही अपने चैतन्यरस का महासमुद्र प्राप्त होता है। हे चैतन्यरस के रसिकजन! ऐसे अपने शांतरस के समुद्र को देखो! उसे देखने से विकल्प की लहरें शांत हो जायेंगी।

चैतन्य में ढला हुआ ज्ञान तो अतिगंभीर है। नयपक्ष के विकल्पों में ऐसी गंभीरता नहीं है कि वह अंतर में चैतन्य आत्मा को देख सके। धर्मी की दृष्टि अंतर में चैतन्य को देखनेवाली है, वह अपने आनंदरस के एक अंश को भी विकल्प में नहीं जाने देती। चैतन्यरस तो परम शांत है, राग के आकुल रस से उसकी तुलना नहीं हो सकती। ज्ञान स्वयं ही अपने आधार से परिणमित होता हुआ अपने को विकल्प से भिन्न ज्ञानरूप अनुभव करता है। जिसने ऐसा अनुभव किया, वह जीव महावीर के मार्ग में आ गया।

धर्मी के ज्ञानरस के प्रवाह में बीच में विकल्प नहीं आता। विकल्प तो ज्ञानप्रवाह में भिन्न का भिन्न बहार किनारे रहता है, वह ज्ञान में प्रविष्ट नहीं होता। विकल्प के किसी अंश का कर्तृत्व या वेदकता ज्ञानी के ज्ञान में नहीं रही। ज्ञानी का ज्ञान तो विकल्प से पार शांतरसरूप हुआ है। ऐसा ज्ञान वह भगवान के कहे हुए बारह अंगों का सार है। अहा, चैतन्य के आनंद का रस हमने चख लिया है। अब सांसारिक विषयों में हमारी परिणति नहीं जायेगी। चैतन्य के आनंदरस के समक्ष जगत के सर्व रस तुच्छ हैं। दुनिया क्या कहेगी?—निंदा करेगी या प्रशंसा?—यह देखने के लिये ज्ञानी नहीं रुकते। दुनिया से प्रमाण-पत्र नहीं लेना है। हमें तो अपने अनुभवज्ञान द्वारा अपने आत्मा का प्रमाण-ज्ञान मिल गया है; अपने आत्मा में से शांति का वेदन आ गया है, वहाँ दूसरे से पूछना नहीं रहता। हम अब भगवान के मार्ग में सम्मिलित हो गये हैं... वीर भगवान का कहा हुआ मार्ग आत्मा में देख लिया है और उसी मार्ग से अल्पकाल में पूर्ण आत्मा को साधकर हम भी परमात्मा हो जायेंगे। ●

संतों की शिक्षा

अरे जीव! ऐसा यह मनुष्य अवतार और सत्संग का अवतसर मिला है, उसमें तू चेत... चेत! अपने आत्मा के हित का उद्यम कर, क्योंकि पुनः पुनः ऐसा अवसर मिलना दुर्लभ है; इसलिये दुनिया के झंझट से निकल जा... दुनिया का जैसा होना हो, वैसा होगा... उसकी उपेक्षा करके तू अपना हित कर ले। तेरे हित की रीति संत तुझे बतलाते हैं।

: आवश्यक निवेदन :

इसी के साथ आत्मधर्म का 27 वाँ वर्ष समाप्त होता है। कृपया, आगामी नये वर्ष का चंदा 4) चार रुपये मनी ऑर्डर से भिजवा देवें। ताकि आपको आत्मधर्म नियमित मिलता रहे।

पता:—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

विविध समाचार

आगरा (उ.प्र.) में धार्मिक शिक्षण शिविर का विशाल आयोजन

[दिनांक 4 जून से 23 जून 1972 तक]

उद्देश्य—बालकों को सरल सुबोध एवं सुरुचिकर शैली से जैनधर्म का ज्ञान कराना।

पाठ्य-पुस्तकें—आपको यह जानकर अतीव प्रसन्नता होगी कि इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्टय जयपुर द्वारा संचालित श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ की ओर से बालकों में धर्म शिक्षा के प्रति बढ़ती हुई अरुचि को दृष्टिगत करते हुए उसके प्रति आकर्षण पैदा करने के लिये सरल सुबोध शैली व भाषा में पाठ्य-पुस्तकों की रचना की गई है। अभी तक प्रवेशिका कक्षा तक का निम्न प्रकाशन हो चुका है तथा आगमी परीक्षाओं के लिये प्रकाशन चालू है।

बालबोध पाठमाला भाग—1-2-3
वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग—1-2-3
सुलेख की कॉपी भाग—1

इन पुस्तकों का पठन-पाठन आज व्यापक रूप से भारत भर में हिन्दी-भाषी क्षेत्र के 147 जैन स्कूल एवं पाठशालाओं में चल रहा है।

परीक्षा बोर्ड और उसकी लोकप्रियता—

विद्यापीठ के अंतर्गत एक परीक्षा बोर्ड भी स्थापित है जो वर्ष में दो बार परीक्षा लेता है। बोर्ड को स्थापित हुए अभी चार ही वर्ष हुए हैं, फिर भी इस वर्ष इस बोर्ड की परीक्षा में सम्मिलित होनेवाले विद्यार्थियों की संख्या 15000 तक पहुँच जाना इस पाठ्य-पुस्तकों की लोकप्रियता का परिचायक है और पाठ्य-पुस्तकों की अब तक कई संस्करणों में लगभग दो लाख प्रतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

अन्य भाषाओं में प्रकाशन और शिक्षण—

रुचिकर शैली के कारण इन पुस्तकों को हिन्दी भाषा के अलावा गुजराती एवं मराठी भाषाओं में प्रकाशित करने की बहुत जोर से माँग हुई है। अत: विद्यापीठ ने अन्य भाषाओं में भी प्रकाशन कराने का निर्णय लिया। फलत: गुजराती भाषा में बालबोध पाठमाला भाग 1, 2, 3, व वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग 1, 2, 3, का अनुवाद होकर प्रकाशन भी हो चुका है और उनक पठन-पाठन भी प्रारंभ होकर इस वर्ष 1500 गुजराती भाषा छात्र परीक्षा में सम्मिलित हुए हैं। इस भाषा के छात्रों में धर्म-शिक्षा का प्रचार करने हेतु एवं गुजराती भाषाभाषी छात्रों की परीक्षा की व्यवस्था करने हेतु विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड की एक शाखा की अहमदाबाद में स्थापना हो चुकी हे और वहाँ यह कार्य संतोषजनक रूप से चल रहा है।

मराठी भाषा भाईयों की माँग की पूर्ति हेतु बालबोध पाठमाला के तीनों भागों और वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग 1 का अनुवाद हो चुका है, आशा है इस वर्ष हमारे शिक्षण-शिविर प्रारंभ होने तक कम से कम एक पुस्तक का प्रकाशन पूर्ण हो जायेगा। हमारी योजना है कि जिसप्रकार गुजराती भाषी क्षेत्र के लिये परीक्षा बोर्ड की शाखा की स्थापना होकर उस क्षेत्र में कार्य हो रहा है। उसीप्रकार मराठी भाषी क्षेत्र के लिये भी अलग शाखा स्थापित करके कार्य किया जावे। उसके बाद कन्नड़ भाषी क्षेत्र को हाथ में लेने की योजना है।

धार्मिक शिक्षा केन्द्रों की विशाल योजना—

यह भी अनुभव किया गया है कि हमारे छोटे-बड़े अधिकांश स्कूलों के संचालन में समाज का लाखों रुपया खर्च होकर भी धर्म-शिक्षा बालकों को नहीं मिल पाती है। अत: एक ऐसी योजना बनाई जावे जिससे कम खर्च होकर बालकों को धर्म-शिक्षा मिल सके। अत: भारत भर में जगह-जगह ऐसी पाठशालाएँ खोली जावें जो प्रतिदिन नियमितरूप से एक घंटा बालकों को स्कूल के समय के अतिरिक्त समय में धर्म-शिक्षा दे सकें। हमें सुचित करते हुए हर्ष होता है कि इस योजना के अंतर्गत आज सब मिलकर वीतराग विज्ञान पाठशाला के नाम से इस समय 76 पाठशालाएँ कार्यरत हैं।

वीतराग विज्ञान पाठशाला फंड—

उक्त योजना की पूर्ति के लिये विद्यापीठ ने वीतराग विज्ञान पाठशाला फंड नाम के

स्वतंत्र फंड की स्थापना की है। इस योजना के अंतर्गत चलनेवाली पाठशालाओं को चलाने हेतु फंड से हर एक पाठशाला को 20) रुपये मासिक सहायता दी जाती है।

प्रशिक्षण शिविर—

विद्यापीठ ने यह भी अनुभव किया कि इस योजना की सफलता मुख्यरूप से इस बात पर आधारित है कि इन पुस्तकों को पढ़ानेवाले अध्यापक, अध्यापिकाओं को यह ज्ञान कराया जाये कि बालक को इन पुस्तकों के पाठों को किसप्रकार से पढ़ाया जावे, जिससे कि वे थोड़े श्रम के द्वारा ही उनके भावों को सरलता से हृदयंगम कर लें, इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु योजना की उपयोगिता और भी ज्यादा बढ़ जायेगी। अत: स्कूलों में ग्रीष्मकालीन अवकाश के समय साल में एक बार विद्यापीठ ने अध्यापक एवं अध्यापिकाओं का प्रशिक्षण शिविर लगाने की योजना प्रारंभ की, उसी शृंखला में यह चतुर्थ शिविर आगरा में लगाया जा रहा है।

शिविर व्यवस्था—

इस शिविर का मूल उद्देश्य जैन धर्म का ज्ञान कराकर आत्मबोध कराना है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु यह शिविर चार अंगों में कार्य करेगा:—

1—बालकों के शिक्षण द्वारा

2—अध्यापकों के प्रशिक्षण द्वारा

3—प्रौढ़ वर्ग के शिक्षण द्वारा

4—सार्वजनिक प्रवचनों द्वारा।

छात्रों के शिक्षण की योजना—

हमारी योजना है कि शिविर के दिनों में 4 जून से 21 जून तक 18 दिन के लिये आगरा नगर के प्रत्येक मोहल्ले में धर्म-शिक्षा के लिये नित्यप्रति प्रात:काल 9 से 10 बजे तक शिक्षण केन्द्र चालू हों, और उनके द्वारा आगरा नगर के सभी जैन छात्र उनमें प्रवेश प्राप्त कर पूर्ण लाभ लेवें। आगरा नगर इतना बड़ा है और उसमें जैन बंधुओं की भी बहुत बड़ी संख्या है तथा हमारी समाज लगभग 17 शिक्षा संस्थाओं को चला रही है जिनमें लगभग सात हजार जैनाजैन छात्र लाभ ले रहे हैं। हमारा प्रयास है कि समाज एवं संस्थाधारियों के पूरे सहयोग से 20 केन्द्रों में आगरा नगर के लगभग एक हजार छात्र जैनधर्म की शिक्षा का लाभ ले सकेंगे।

अध्यापक प्रशिक्षण योजना—

प्रशिक्षण कक्षायें अध्यापकों के लिए बालबोध पाठमालाओं को पढ़ाने की पद्धति के लिये 'बालबोध प्रशिक्षण' नाम से एवं वीतराग विज्ञान पाठशालाओं को पढ़ाने के लिये 'प्रवेशिका प्रशिक्षण' नाम से 4 से 20 जून तक चलेंगी। 21 जून को परीक्षा होकर 23 जून को दीक्षांत समारोह में सफलता प्राप्त प्रशिक्षणार्थियों को उपाधियाँ दी जावेंगी।

प्रशिक्षित अध्यापकों के अभाव की पूर्ति—

हमारा प्रयास यह है कि समाज एवं संस्थाधिकारियों के पूरे सहयोग से इन कक्षाओं में लगभग 100 प्रशिक्षणार्थी आगरा नगर में जैन समाज द्वारा संचालित शिक्षासंस्थाओं के अध्यापक एवं अध्यापिकाएं भाग लेंगे, आगरा से बाहर भारत के अनेक प्रदेशों से आनेवाले प्रशिक्षणार्थियों की संख्या भी लगभग 150-200 होगी। इन कक्षाओं में जैन-अजैन सभी बन्धु भाग ले सकेंगे जो हमारी शिक्षा संस्थाओं में जाकर बालकों को इन पुस्तकों के माध्यम से धर्म-शिक्षा दे सकें तथा हमारी वीतराग विज्ञान पाठशाला फंड योजना के अंतर्गत रात्रि-शालाओं में भी कार्य कर सकें। प्रशिक्षणार्थियों की सुविधा के लिये प्रशिक्षण निर्देशिका पुस्तक का भी प्रकाशन हो चुका है, जो हर एक नवीन प्रशिक्षणार्थी को विद्यापीठ की ओर से नि:शुल्क भेंट की जाती है।

प्रौढ़ वर्ग शिक्षा योजना—

प्रौढ़ वर्ग में धार्मिक जागृति हेतु प्रौढ़ कक्षाएँ समारोह के पंडाल में ही प्रात:काल 9 से 10 बजे तक चलाई जावेगी। उनमें जैन सिद्धांत प्रवेशिका, छहढाला आदि पुस्तकों के माध्यम से तत्त्वज्ञान कराया जावेगा।

सार्वजनिक प्रवचन—

प्रात:काल 7.00 से 8.00 बजे एवं रात्रि को 8.00 से प्रतिदिन समारोह पंडाल में आध्यात्मिक विषयों पर सार्वजनिक प्रवचन होंगे। प्रवचन-स्थल से दूर रहनेवाले भाईयों की सुविधा के लिये उनके आग्रह पर अन्य स्थानों पर भी प्रवचन-सभाओं के आयोजन की योजना है।

आपका अपेक्षित सहयोग—

1. अपने मोहल्ले में क्षेत्रीय कमेटियाँ बनाकर बालकों की शिक्षा के लिये शिक्षण केन्द्रों

की स्थापना कराकर उनमें ज्यादा से ज्यादा बालकों को प्रवेश कराने के लिये प्रेरित और प्रोत्साहित करें।

2. अपनी शिक्षण संस्थाओं के अधिकारियों के सहयोग द्वारा ग्रीष्मावकाश होने के पहिले—

(अ) छात्रों से प्रवेश-फार्म भरवाकर उनको धर्म-शिक्षा लेने के लिये प्रोत्साहित करें।

(आ) संस्था के अध्यापकों को प्रशिक्षण कक्षाओं में प्रवेश लेने के लिये प्रोत्साहित करें एवं उनसे प्रवेश-फार्म भरवायें।

नोट—ये प्रशिक्षित अध्यापक आपको संस्थाओं में धर्म-शिक्षा दे सकेंगे एवं रात्रिकालीन पाठशालाओं की स्थापना होने पर उनमें भी धर्म-शिक्षा दे सकेंगे।

3. जैन धर्म का बोध करने एवं आत्म-शांति का मार्ग प्राप्त करने के लिये समारोह के हर एक कार्यक्रम में उत्साहपूर्वक भाग लें।

हमारा निवेदन—

इस समस्त कार्यक्रम की सफलता आप सबके सहयोग पर ही निर्भर है। अत: हमें आशा ही नहीं, पूर्ण हार्दिक विश्वास है कि आप इस पुनीत कार्य में हमको पूर्ण हार्दिक सहयोग प्रदान कर हमारे उत्साह को बढ़ायेंगे।

समारोहस्थल—
नगर महापालिका कन्या विद्यालय
तारकी गली, मोती कटरा, आगरा

निवेदक—

पदमचंद जैन : संयोजक
श्री वी.वि.शि. शिविर, आगरा

नेमीचंद पाटनी : मंत्री
टो. स्मा. ट्रस्ट, जयपुर

श्री हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र (उत्तरप्रदेश) के समस्त वाद-विवाद समाप्त

वर्षों से दिगम्बर व श्वेताम्बर समाज में अनेकों मुकदमे अदालतों में चले आ रहे थे। वह सब समाप्त हो गये हैं। श्री सुकुमारचंद जैन, प्रधानमंत्री श्री हस्तिनापुर क्षेत्र व अ.भा. दिगम्बर जैन परिषद के प्रयासों से सभी मामलों पर श्वेताम्बर समाज से समझौते हो गये हैं। आज अन्य कई तीर्थक्षेत्रों पर भी इसीप्रकार मुकदमें दिगम्बर व श्वेताम्बर समाजों के बीच चल रहे हैं। वहाँ की समाजों को इससे प्रेरणा लेकर अपने यहाँ भी समझौते कर मुकदमों को समाप्त कर देना चाहिये। भगवान महावीर का 2500 वाँ निर्वाण-महोत्सव तभी सफल समझा जायेगा, जब श्वेताम्बर एवं दिगम्बर के बीच होनेवाले समस्त वाद-विवाद इस समारोह से पूर्व ही समाप्त हो जायें।

भगतराम जैन : मंत्री
अ.भा. दिगम्बर जैन परिषद

श्री वीतराग विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण एवं प्रशिक्षण शिविर समारोह आगरा

उक्त समारोही प्रबंध समिति का गठन करने हेतु सकल दिगम्बर जैन समाज आगरा की एक वृहत सभा श्री दिगम्बर जैन मंदिर तार की गली, मोती कटरा आगरा में दिनांक 28-4-72 को रात्रि 9 बजे से श्रीमान् सेठ सुंदरलालजी जैन की अध्यक्षता में हुई। जिसमें एक सौ एक प्रबंध समिति के सदस्यों का चयन किया गया। पदाधिकारी निम्न भाँति चुने गये।

अध्यक्ष :—	श्री पद्मचंदजी जैन सर्राफ।
उपाध्यक्ष :—	श्री ख्यालीरामजी जैन।
स्वागताध्यक्ष :—	श्री प्रेमचंदजी जैन सर्राफ।
मंत्री :—	श्री नेमीचंदजी पाटनी।
उप मंत्री :—	श्री चंदाबाबू जैन।

शिविर 4 जून 72 से 23 जून 72 तक चलेगा। धर्मप्रेमी बंधुओं से निवेदन है कि शिविर में पधारकर आत्मिक लाभ लेवें।

निवेदन
सुमेरचंद जैन 'भगत', प्रचार मंत्री

—: आवश्यक सूचना :—

श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ जयपुर का चतुर्थ प्रशिक्षण व शिक्षण शिविर इस वर्ष आगरा समाज के आमंत्रण पर आगरा में दिनांक 4 जून से 23 जून 1972 तक होने जा रहा है। इस शिविर में अध्यापक बंधुओं को धर्माध्यापन की विधि में प्रशिक्षित किया जायेगा।

बालबोध प्रशिक्षण में वे ही अध्यापक सम्मिलित हो सकेंगे, जिन्होंने बालबोध पाठमालाओं को कम से कम 50 प्रतिशत अंक प्राप्त कर उत्तीर्ण कर लिये हों तथा प्रवेशिका प्रशिक्षण में वे अध्यापक भाग ले सकेंगे जिन्होंने वीतराग विज्ञान पाठमालाओं को कम से कम 50 प्रतिशत अंक प्राप्त कर उत्तीर्ण कर लिये हों तथा बालबोध प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं। जिन अध्यापकों ने उक्त तीनों भाग उत्तीर्ण नहीं किये हों और प्रशिक्षण लेना चाहते हैं, वे उक्त तीनों पुस्तकों की पूरी-पूरी तैयारी करके तीन जून को आगरा पहुँचे, उनकी परीक्षा लेकर प्रशिक्षण में शामिल कर लिया जावेगा।

मंत्री, टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर-4

पूज्य श्री कानजीस्वामी के मंगल-विहार का कार्यक्रम

(स्वामीजी तारीख 17 मई के प्रातःकाल फतेपुर से मंगल-प्रस्थान करेंगे)

रामपुरा होकर बामणवाड़ (तारीख 17-18) (रामपुरा में वेदी प्रतिष्ठा तारीख 17)

उदयपुर (राजस्थान) (तारीख 19 से 22 मई तक)

कुरावड (राजस्थान) तारीख 23-24 मई (स्वाध्यायभवन का उद्घाटन)

मंदसौर (म.प्र.) तारीख 25 से 28 मई

प्रतापगढ़ (राजस्थान) तारीख 29 मई से 1 जून

रतलाम (म.प्र.) तारीख 2 से 3 जून

बड़नगर (म.प्र.) तारीख 4 जून

इंदौर (म.प्र.) तारीख 5 से 8 जून

बम्बई तारीख 9 जून

भावनगर (सौराष्ट्र) तारीख 10 से 13 जून तक

सोनगढ़-आगमन तारीख 14 जून बुधवार ज्येष्ठ शुक्ला 3

अमेरिका में भगवान महावीर के 2500 वें निर्वाण-महोत्सव मनाने की तैयारियाँ

न्यूयार्क 27 मार्च 72। कल यहाँ लगभग सौ जैनों द्वारा भगवान महावीर का 2500 वाँ निर्वाण-महोत्सव मनाने के बारे में एक सभा हुई। अमरीका में लगभग 1000 जैन हैं। एक घंटे का यह समारोह भारत के कोन्टलेट जनरल 3 East 64th Street Newyork में मनाया गया। सब पुरुषों ने माथे पर केसर का टीका लगाया, सब स्त्रियों ने मंगल-गान गाये।

भगवान की मूर्ति को एक छोटी सी वेदी में विराजमान कर आरती उतारी गई।

डाक्टर नरेन्द्र सेठी जो कि अमरीका जैन सेंटर के संस्थापक व अध्यक्ष हैं और सेंट जौहन यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर हैं, ने बताया कि भगवान महावीर के 2500 निर्वाण उत्सव के उपलक्ष में अमेरिका में एक जैन मंदिर बनाने के लिए खर्चा एकत्र किया जावेगा। सभा में डॉक्टर नरेन्द्र जैन भारत सरकार के अमरीकन दूतावास के अफसर तथा श्री ग्रेबैन्जमिन जैन बफेलो यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर तथा श्री वायनेस्टलि जैन ने भी भाग लिया।

न्यूयार्क टाईम्स तारीख 27-3-72 से साभार

अनुवादित प्रेषक : कैलाशचंद जैन, दिल्ली

इंदौर में सप्तम जैनधर्म शिक्षण-शिविर का भव्य आयोजन

(दिनांक 25 मई से 8 जून 1972)

[आध्यात्मिक संत पूज्य कानजीस्वामी का दिनांक 5-6-7-8 जून को इंदौर आगमन।]

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी जैनधर्म शिक्षण समिति द्वारा दिनांक 25वीं मई से 8 जून तक ग्रीष्मावकाश के दिनों में धार्मिक शिक्षण-शिविर का आयोजन किया जा रहा है।

इस वर्ष विशेष हर्ष की बात यह है कि शिविर के अंतिम 4 दिनों में आध्यात्मिक संत पूज्य श्री कानजीस्वामी इंदौर पधार रहे हैं। अत: शिविरार्थियों को जैनतत्त्व दर्शन के अध्ययन के लाभ के साथ ही पूज्य स्वामीजी के अध्यात्मरस-पूरित प्रवचनों का लाभ भी प्राप्त होगा।

पूज्य स्वामीजी के स्वागत की भव्य तैयारियाँ प्रारंभ की जा रही है। इंदौर समाज की एक बैठक में इस हेतु सेठ राजकुमारसिंहजी कासलीवाल की अध्यक्षता में एक 25 सदस्यीय स्वागतकारिणी तथा 101 सदस्यीय स्वागत-समिति का गठन किया गया है। श्री देवकुमारसिंहजी कासलीवाल स्वागत-मंत्री मनोनीत किये गये हैं।

शिक्षण-शिविर तथा स्वामीजी के प्रवचनों का लाभ लेने हेतु बाहर से आनेवाले बंधुओं के लिये स्थानीय आदिनाथ मांगलिक भवन में निवास की व्यवस्था की गई है।

—जमनालाल जैन

संयोजक—प्रचार समिति इंदौर (म.प्र.)

आवश्यकता

श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ जयपुर द्वारा प्रशिक्षित दस अध्यापकों की आवश्यकता है। शास्त्री, न्यायतीर्थ, आदि उपाधियुक्त अध्यापकों को प्राथमिकता दी जावेगी। यदि वे प्रशिक्षित नहीं हैं, तो उन्हें नियुक्ति के बाद प्रशिक्षित किया जायेगा। वेतन योग्यतानुसार।

मंत्री, टोडरमल स्मारक भवन

ए-4, बापूनगर, जयपुर-4 (राज.)

पंडित श्री दीपचंदजी साधर्मीकृत

ज्ञान-दर्पण

[गतांक से चालू]

राग-द्वेष-मोह के विभाव धरि आयौ तौउ, निश्चय निहारि नाहिं परपद गह्यो है।
एक ज्ञानज्योति कौ उद्योत यौ अखंड लियें, कहा भयौ जो तौ जगजालमाहिं बह्यौ है॥
महा अविकारी शुद्ध पद याकौ ऐसौ जैसौ, जिनदेव निजज्ञानमाहिं लहलह्यो है।
ज्ञायक प्रभामैं द्वैतभाव कोऊ भासै नाहिं, स्वसंवेदरूप यौं हमारो बनि रह्यो है॥37॥

ज्ञान उपयोग ज्ञेयमाहिं दे अनादि ही कौ, करि अरुझार आप एक भूलि बह्यो है।
अमल प्रकाशवत् मूरतिस्यों बँधि रह्यो, महानिरदोष तातैं परहीमैं फह्यो है॥
एसे व्है रह्यो है तोऊ अचल अखंडरूप, चिदरूपपद मेरो देव जिन कह्यौ है।
चेतना निधानमैं न अन्य परवेश कोऊ, स्वसंवेदरूप यों हमारा बनि रह्यो है॥38॥

जीव नट नाट थाट गुण है अनंत भेष, पातहि शकति रसरीति विसतारा की।
चेतनास्वरूप जाकौ दरसन देखतु है, सत्ता मिरदंग ताल प्रमेय है प्यारा की॥
हावभाव आदि कटाक्षनकौ खेंचवौ जौ, सुरकौ जमाव सब समकित धारा की।
आनंद की रीति महा आप करै आप ही कौं, महिमा अखंड ऐसी आतम अपारा की॥39॥

जैसे कोउ नर भेष पशु के अनेक धरै, पशु नहीं होइ रहै यथावत् नर है।
तैसैं जीव च्यारिगति स्वांग धरै चिरही कौ, तजै नहिं एक निज चेतना कौ भर है॥
ऐसी परतीति किये पाइये परमपद, होइ चिदानंद सिंवरमणी को वर है।
सासतौ सुथिर जहाँ सुखकौ विलास करै, जामैं प्रतिभासैं जेते भाव चराचर है॥40॥

दोहा :— निज महिमा मैं रत भए, भेदज्ञान उर धारि।
ते अनुभौ लहि आपकौ कर्मकलंक निवारि॥41॥

आत्मा का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

1	समयसार	(प्रेस में)
2	प्रवचनसार	4.00
3	समयसार कलश-टीका	2.75
4	पंचास्तिकाय-संग्रह	3.50
5	नियमसार	4.00
6	समयसार प्रवचन (भाग-1)	4.50
7	समयसार प्रवचन (भाग-2)	4.50
8	समयसार प्रवचन (भाग-4)	4.00
9	मुक्ति का मार्ग	0.50
10	चिद्विलास	1.50
11	जैन बालपोथी (भाग-1)	0.25
12	जैन बालपोथी (भाग-2)	0.40
13	समयसार पद्यानुवाद	0.25
14	नियमसार (हरिगीत)	0.25
15	द्रव्यसंग्रह	0.85
16	छहढाला (सचित्र)	1.00
17	अध्यात्म-संदेश	1.50
18	श्रावक धर्म प्रकाश	2.00
19	लघु जैनसिद्धान्त प्रवेशिका	0.25
20	दशलक्षण धर्म	0.75
21	मोक्षमार्गप्रकाशक	2.50
22	मोक्षमार्गप्रकाशक (7वाँ अध्याय)	0.50
23	ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव	3.00
24	मंगल तीर्थयात्रा (सचित्र गुज०)	6.00
25	हितपद संग्रह (भाग-2)	0.75
26	सत्तास्वरूप (श्री गोम्मटसार की प्रस्तावना एवं समाधिमरण स्वरूप सहित)	1.10
27	अष्ट-प्रवचन (भाग-1)	1.50
28	अष्ट-प्रवचन (भाग-2)	1.50
29	अध्यात्मवाणी	1.00
30	अमृतवाणी	1.10
31	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-1	0.75
32	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-2	1.10
33	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-3	0.50
34	बालबोध पाठमाला, भाग-1	0.40
35	बालबोध पाठमाला, भाग-2	0.50
36	बालबोध पाठमाला, भाग-3	0.55
37	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-1	0.55
38	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-2	0.75
39	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-3	0.75
	छह पुस्तकों का कुल मूल्य	3.30
40	वीतरागविज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	2.25
41	खानिया तत्त्वचर्चा (भाग-1)	8.00
42	'' '' (भाग-2)	8.00

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)